www.thearyasamaj.org

R.N.I. No. 2321/57
रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15
सितम्बर 2013
अंक 8

ओ३म्

तपोभूमि

मासिक

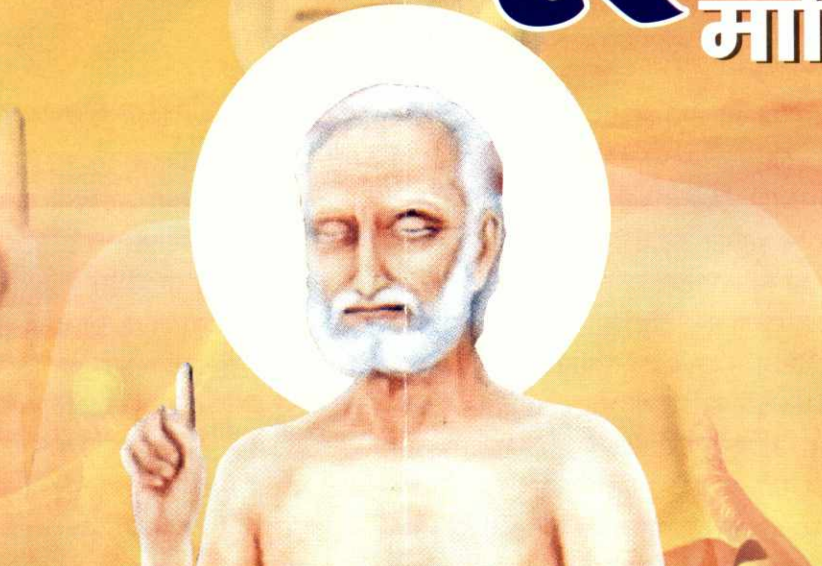

प्रज्ञाचक्षु गुरूवर दण्डी स्वामी विरजानन्द जी
(1779 - 1868)

www.thearyasamaj.org

आलोक पुरुष श्री विरजानन्द दण्डी को नमन

श्री गुरुवर विरजानन्द दण्डी जी युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के गुरुदेव थे उनके अद्वितीय व्यक्तित्व का परिचय महर्षि दयानन्द द्वारा जनहित में सृजित साहित्य से ही पता लगता है उनकी अद्वितीय प्रतिभा की कल्पना सामान्य श्रेणी का व्यक्ति तो कर ही नहीं सकता है महर्षि दयानन्द जैसे व्यक्तित्व का गुरु होना कोई सामान्य बात नहीं है महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त पं0 बुद्धदेव विद्यालंकार ने महर्षि दयानन्द के विषय में लिखा है कि–

ऋषि तुम इतने महान् बन आये।
हम तुमको पहचान न बनाये।।

जब पं0 बुद्धदेव जैसा अद्वितीय विद्वान् ऋषि दयानन्द की महत्ता के आंकलन में अपने को असमर्थ पाता है तो उनके गुरु का आंकलन करना सामान्यजन के बस की बात कहाँ है? गुरु विरजानन्द महाराज की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए गुरु विरजानन्द के अनन्य भक्त महर्षि दयानन्द के सर्वात्मना अनुगामी डॉ0 रामप्रकाश जी ने बहुत सुन्दर लिखने का उद्योग किया है तपोभूमि के पाठकों की प्रेरणा के लिए डॉ0 रामप्रकाश जी द्वारा व्यक्त भावों को ज्यों का त्यों उपस्थित करता हूँ वे लिखते हैं जो व्यक्ति नेत्रहीन है जिसने जीवन में किसी पुस्तक के दर्शन नहीं किये, कोई पुस्तक स्वयं खोलकर पढ़ी नहीं, फिर भी संस्कृत–व्याकरण तथा अन्य क्लिष्ट विषयों का अद्वितीय पण्डित है नेत्रहीनता न उनके शास्त्र ज्ञान में बाधक हुई न अध्यापन में, जो नेत्रहीन भले ही थे परन्तु ज्योतिष्मान थे, जिस दुबले–पतले व्यक्ति के भीतर इस्पात का कुछ था चट्टान जैसा, जिसने हर विपदा को सुअवसर में परिवर्तित किया, प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी जिसका मार्ग अवरुद्ध न कर सकीं, उस अदम्य उत्साह की मूर्ति को नमन।

जिसका मस्तिष्क अद्‌भुत पुस्तकालय था, जिसकी जिह्वा पर सरस्वती नृत्य करती थी, जिसके वैदुष्य के सामने कोई पण्डित ठहर न सका, जो श्रुतिधर था जो प्रतिभाशाली कवि था, जो विद्यावारिधि था, जो प्रबल तार्किक एवं प्रतिवादी अकाट्य शास्त्रार्थी था, जो शास्त्र–समर का अजेय योद्धा था, उस शास्त्रत्वमर्मज्ञ प्रज्ञा–पुरुष को नमन।

जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर ब्रह्म में विचरण किया जिसने पुत्रैषणा, वितैषणा एवं लोकैषणा पर पूर्ण विजय प्राप्त की जिसका सभी हिन्दू, मुस्लिम, साधु, सन्त, फकीर आदर करते थे, जो सुख–दुःख, हानि–लाभ से ऊपर था, जो स्थितप्रज्ञ था, उस सत्य के पुजारी अपनी प्रकृति के राजेश, धुन के धनी, विरक्त, योगी, निर्भीक, निःस्पृह संन्यासी को नमन।

जिस आचार्य ने सहस्रों वर्षों के पश्चात् वेद को स्वतः प्रमाण घोषित किया, जिसने प्रत्येक शास्त्र को वेद की कसौटी पर परखना चाहा, जिसने व्याकरण का प्रयोग वेदादि के लिए स्वीकार किया, जो व्याकरण पढ़ाते समय वेदादि से उदाहरण देने के कारण शंकर, रामानुज, बल्लभ तथा मध्य आदि मध्य युगीन आचार्यों से कहीं आगे था, जिसने आगे बढ़ने के लिए वेद की ओर पीछे मुड़ने का निर्देश किया, जो नाविक चप्पू चलाते समय पीछे था और नाव को आगे बढ़ाता–आगे था, जिस आचार्य प्रवर ने पहली बार सायण–भाष्य को अनार्ष कहा, जिसने विदेशी शासन में भी मन्त्रोच्चारण शुद्ध न करने वाले विदेशियों को वेदाध्ययन का अनाधिकारी बताया, जिसने वेदार्थ समझने की सही कुंजी प्रदान की उस साहसी महान् मनीषी वेदभक्त को नमन।

–शेष कवर पृष्ठ नं. 3 पर

www.thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)
शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–59 संवत्सर 2070 सितम्बर 2013 अंक 8

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

सितम्बर 2013

सृष्टि संवत्
1960853114

दयानन्दाब्दः 190

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–ध्रुवदेव परिब्राजक	4–5
दयानन्द दिग्विजयम्	–आचार्य मेघाव्रत	6–9
योगेश्वर कृष्ण	–पं0 चमूपति	10–14
ज्ञान कर्म संन्यास योग	–डॉ0 सोमदेव शास्त्री	15–18
सरलगतिः	–स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती	19
धूर्त जन	–ओमप्रकाशसिंह	20–21
वैदिक विज्ञान में रासायनिक ऊर्जा	–कृपालसिंह वर्मा	22
संकल्पशक्ति का चमत्कार	–महात्मा ओममुनि	23–26
विवाहों के अप्रसांगिक रीति–रिवाज और उन पर भारी व्यय	–मनमोहन कुमार आर्य	27–30
महर्षि दयानन्द दो बार नहीं, तीन बार रोए	–खुशहालचन्द्र आर्य	31–33
भोजन का स्वास्थ्य तथा रोगों पर प्रभाव	–डॉ0 लक्ष्मीनारायण	34

❀ ❀ ❀

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

www.thearyasamaj.org

वेदवाणी

लेखकः स्वामी ध्रुवदेव परिव्राजक आर्यवन रोजड़, (गुज.)

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्ववितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।। यजु. अ. 36/ मं.3

शब्दार्थः (ओ३म्) यह परमेश्वर का मुख्य या सब नामों में उत्तम नाम है। जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है, वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है। इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है या इस एक नाम के साथ अन्य सब नाम लग जाते हैं। जैसे आकार से विराट्, अग्नि आदि, उकार से हिरण्यगर्भ, वायु आदि, मकार से ईश्वर, आदित्यादि। (भूः) जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है (भुवः) जो सब दुःखों से रहित तथा मुक्ति की इच्छा करने वालो, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है (स्वः) जो स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति कराने वाला है, जो नानाविद जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है, नियम में रखता है और सबके ठहरने का स्थान है। उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि प्रकाशकों के भी प्रकाशक सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी व समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) सबके चाहने योग्य, शुद्ध स्वरूप, सर्वत्र विजय कराने वाले परमात्मा का जो (वरेण्यम्) अतिश्रेष्ठ या अत्युत्तम ग्रहण या स्वीकार करने योग्य प्राप्त होने योग्य, और ध्यान करने योग्य (भर्गः) सब क्लेशों, दुःखों, दोषों या दुःखमूलक पापों को भस्म करने वाला व पवित्र करने वाला शुद्ध विज्ञानस्वरूप या चेतन ब्रह्मस्वरूप है (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष को हम लोग (धीमहि) धारण करें व उसका ध्यान करें किस प्रयोजन के लिए कि (यः) जो सविता देव परमात्मा हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे-अच्छे कामों में सदा प्रवृत्त करें। –(संस्कार विधि+ वेदभाष्य+ पंचमहायज्ञविधि + सत्यार्थ प्रकाश)

इसी प्रयोजन के लिये इस जगदीश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना और इससे भिन्न किसी को उपास्य इष्टदेव उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये। –(संस्कार विधि वेदारम्भः)

इसलिए सब लोगों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु, सब जगत् के जनक और धारण करने हारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्य देहस्वरूप वृक्ष के चार फल हैं, वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा मनुष्यों को प्राप्त करें। – (पंचमहायज्ञविधिः)

हे मनुष्यों! जो सब समर्थों में समर्थ, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त

www.thearyasamaj.org

स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक-ठीक न्याय करने हारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकाररहित, सबके घट-घट का जानने वाला, सब का धर्त्ता, पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करने हारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है, उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप, उसी को हम धारण करें। इस प्रयोजन के लिए कि वह हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामी स्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्मयुक्त मार्ग से हटाके श्रेष्ठाचार सत्यमार्ग में चलावे, उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें। क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है, वहीं हमारा पिता, राजा, न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है। -(सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास)

भावार्थः 1

जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म, अनैश्वर्य व दुःखस्वरूप मलों को छुड़ा के धर्म, ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उनको अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है। -(ऋ. दया. कृत. यजुर्वेदभाष्य अ. 36/ मं. 3))

भावार्थः 2

सब मनुष्यों को चाहिए कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सबके अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़ के उसकी जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपासना का स्थापन कभी न करें, किस प्रयोजन के लिए कि जो हम लोगों से उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ा के धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें। जिससे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये। -(ऋ. दया. कृत. यजुर्वेदभाष्य अ. 22/ मं. 9))

भावार्थः 3

इस मंत्र में वाचक लुप्तोपमालंकार है। जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी करे। जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उसको पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्र भाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्ते। जैसे परमेश्वर सब दोष, क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे।

-(ऋ. दया. कृत. यजुर्वेदभाष्य अ. 30/ मं. 2))

भावार्थः 4

मनुष्य सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, सबसे उत्तम, सब दोषों को नष्ट करने वाले, शुद्ध स्वरूप परमेश्वर की उपासना नित्य करें। किस प्रयोजन के लिये, इसके उत्तर में वेद कहता है-स्तुति, धारणा, प्रार्थना और उपासना किया हुआ वह परमेश्वर हमें सब दुष्ट गुण, कर्म, स्वभावों से पृथक् करके सब श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभावों में सदा प्रवृत्त रखे, इसलिये परमेश्वर की स्तुति आदि करना योग्य है। प्रार्थना का यही मुख्य सिद्धान्त है कि जैसी प्रार्थना करें वैसा ही कर्म (आचरण) भी करें।

-(ऋ. दया. कृत. यजुर्वेदभाष्य अ. 3/ मं. 35))

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे

दयानन्द दिग्विजयम्

लेखकः आचार्य मेधाव्रत

छाया घना शीतजलावगाहः श्रीखण्डलेपो हिमशैलवासः।
चन्द्रो रसालाचिंतभोजनानि शान्तिप्रदानि व्यजनं निदाघे।। 27।।

इस गर्मी में सघन छाया, शीतल जल का स्नान, चन्दन का लेप, बर्फीले पर्वतों पर निवास, चन्द्र-चन्द्रिका और श्रीखण्डयुक्त भोजन बड़े ही सुखकर और शान्तिप्रदायक होते हैं॥ 27॥

जलाभिषिक्तेषु लतागृहेषु सुगन्ध्विातैरतिवीज्यमानाः।
दिनानि दीर्घाणि कथं कथचिंनूनिन्युर्धनीन्द्रा विविधैर्विलासैः।। 28।।

इस ऋतु में धनी लोग जलसंसिक्त लतागृहों में सुगन्धित पंखों से हवा किये जाते हुए, अनेक प्रकार की भोग विलास को सामग्रियों से लम्बे दिनों को किसी प्रकार बिता देते हैं॥ 28॥

छायासु गावः सलिले महिष्यः कुंजे मयूरा विपिने कुरंगाः।
नीडे विहंगाः कुसुमेषु भृंगा निषेदुरुग्रांशुमयूखतप्ताः।। 29।।

सूर्य की प्रचण्ड गर्मी के कारण गौएँ छाया में, भैंसे पानी में, मोर झाड़ियों में, हिरन घने जंगल में, पक्षी घोंसलों में और भ्रमर फूलों पर बैठे थे॥ 29॥

वियोगिनां सा हृदयस्थलीव तप्ता मही दुर्जनचित्ततुल्यम्।
सरो विशुष्कं लघु चण्डरश्मिर्वैरीव संतापकरः प्रजज्ञे।। 30।।

वसुन्धरा वियोगियों के हृदय की तरह तप रही थी। तालाब दुर्जनों के चित्त की तरह जल्दी सूख चुके थे और सूर्य शत्रु की तरह संतापकारक हो रहा था॥ 30॥

शैलस्थली दाडिमपाटलालीप्रफुल्लपुष्पारुणकान्तिकाता।
रक्ताम्बरालंकृतपुष्पितांगी पुलिन्दकन्येव विभाति धन्या।। 31।।

अनार और गुलाब के खिले फूलों की लाल-लाल शोभा से मनोहारिणी शैलस्थली, लाल वस्त्रों वाली, पुष्पों से सजी भीलकन्या की तरह सुन्दर शोभित हो रही थी॥ 31॥

स पार्वतीं कांचनपद्मकांची विश्वंभरां विश्वमनोहरां ताम्।
तुतोष पश्यछिंवहर्षदात्रीमृतंभरां बुद्धिमिव प्रसन्नाम्।। 32।।

महर्षि दयानन्द, स्वर्णकमल के समान सोने की मेखला से भूषित, विश्व का भरणपोषण करने वालो, शिवजी को आनन्द देनेवाली, जगन्मनोहारिणी पार्वती की तरह एवं प्रसन्न ऋतम्भरा बुद्धि की

www.thearyasamaj.org

तरह स्वर्ण कमलों से मण्डित विश्वमनोहर कल्याणदायिनी पर्वत-स्थली को देखते हुए प्रसन्न हुए॥ 32॥

महाशयस्तत्र जलाशयालीं स्नानार्हनीरां जनपूर्णतीराम्।
पतत्पतंगाकुलपद्मपुण्यां शुचौ शुचिः प्रैक्षत प्रेक्षणीयाम्॥ 33॥

महान् आशय से सम्पन्न पवित्र दयानन्द ने उस ऋतु में दर्शनीय तालाबों को देखा। उनमें खूब निर्मल स्नान योग्य जल भरा था। उनके किनारे हरसमय मनुष्यों से भरे रहते थे। उनके कमलों पर हंस आदि पक्षी उड़ते और बैठते थे॥ 33॥

हिमालयोत्तुंगसुरम्यशृंगोच्छलत्प्रपातामृतबिन्दुमालाम्।
सूर्यांशुसम्पर्कयुतां च चित्रां माहेन्द्रचापश्रियमादधानाम्॥ 34॥

हिमालय की ऊँची सुन्दर चोटियों पर से जल धारायें जोर से गिर रही थीं। उनसे चारों ओर जल के कण-मंडल उड़ रहे थे। उनमें सूर्य की किरणें ऐसी मालूम हो रही थीं कि मानों इन्द्र ने अपना इन्द्रधनुष तान लिया हो॥ 34॥

आनन्ददिव्यामृतवर्षिणीं तां संसारतापावलिनाशनिष्णाम्।
योगेन्द्रसंसिद्धिमिवाद्रिखण्डे कादम्बिनीं कौतुकवाँल्लुलोके॥ 35॥

स्वामीजी पर्वतों के भागों में योगियों की सिद्धि की तरह मेघमाला को आश्चर्य सहित देखा कि ये दोनों ही आनन्दरूप दिव्यामृत को बरसानेवाली एवं सांसारिक त्रिविध तापरूप उष्णता को नाश करनेवाली हैं। 35॥

शोकापनोदाय महानुभावाज्ञानं यथा ज्ञानिजना ददानाः।
तथाम्बरे नीलमहाम्बुवाहाविनिर्मलं वारि विचेरुरुर्व्याम्॥ 36॥

जैसे ज्ञानी महानुभाव शोक-संताप दूर करने के लिये संसार में पवित्र ज्ञान की वर्षा करते हुए विचरा करते हैं, वैसे ही आकाश में काले-काले बादलों के बड़े-बड़े टुकड़े निर्मल जल बरसाते हुए विचर रहे थे॥ 36॥

तमोमये वर्त्मनि गच्छतो नुर्गुपदेशः क्षणमात्रदीप्तः।
यथा भवेदम्बुदकृष्णकाये विद्युत्प्रकाशोऽपि तथा दिदीपे॥ 37॥

जैसे कुमार्गगामी शिष्य के हृदय में गुरु का सदुपदेश क्षणमात्र के लिये प्रकाशित हो जाता है वैसे ही बादलों के काले शरीर में कभी-कभी बिजली चमक जाती थी॥ 37॥

विद्युद्विलासानिव भोगलक्ष्मीलासान् समालोक्य स हंससंघः।
स्वं मानसं ब्रह्मसरोजशोभं प्रमोदमुक्ता अशितुं प्रपन्नः॥ 38॥

जैसे परमहंसों का समूह सांसारिक भोगविलासों को बिजली की तरह क्षणस्थायी समझकर ब्रह्मरूपी कमल से शोभित हृदयरूपी मानसरोवर में आनन्द रूपी मोती प्राप्त करने के लिये जाता है, वैसे ही इस वर्षा समय में बिजली की चमक को देखकर हंस मानसरोवर में जा चुके थे॥ 38॥

www.thearyasamaj.org

प्रवर्षतां ज्ञानमिवाम्बु दिव्यं सतां बुधानामिव वारिदानाम्।
चिरिं विनेया इव चातकास्ते निपीय तृप्ता नितरां बभूवुः।। 39।।

जैसे दिव्य ज्ञान बरसाते हुए विद्वान् सन्त गुरुओं का उपदेशामृत पीकर शिष्य तृप्त हो जाते हैं, वैसे ही चातक बरसते बादलों का जलपान कर खूब तृप्त हो चुके थे॥ 39॥

विशालशैलोपमभीमरूपैः पयोधरैः प्रावृषि लोकचक्षुः।
अवासि संमोहतमस्समूहैर्यथाम्बकं ज्ञानमयं जनानाम्।। 40।।

जैसे मोहान्धकार से मनुष्यों के ज्ञान–नेत्र ढक जाते हैं, वैसे ही संसार का नेत्र सूर्य, विशाल शैलाकार भयंकर रूपधारी बादलों से घिर गया था॥ 40॥

उन्मार्गवाहीनि नदीजलानि समन्ततोऽयान् सुमलीमसानि।
अशिक्षितानां हृदयानि यद्वल् लक्ष्मीं प्रपद्याभिनवां प्रभूताम्।। 41।।

जिस प्रकार अशिक्षितों के मन नई प्रभूत लक्ष्मी को पाकर मलिन और कुमार्गगामी हो जाते है, वैसे ही नदियों का जल मर्यादा–रहित होकर मलिन हो गया था॥ 41॥

नीलाम्बुदानामवलीमधोऽधः प्रहर्षिता मंजुरवा बलाकाः।
मन्दारमाला इव राजमानाः समुत्पतन्त्योऽजनयन्नृमोदम्।। 42।।

काले बादलों की पंक्तियों के नीचे उड़ते हुए मधुर शब्दकारी आनन्दित बगुलों की पंक्तियाँ सुन्दर मन्दार माला की तरह शोभा देती हुई मनुष्यों को आनन्द दे रही थीं॥ 42॥

सा सूत्रधारेण सहाम्बुदेन तडिन्नटी पुष्कररंगशालाम्।
उपेत्य लास्यं विदधे सहास्यं द्राक् चंचला चंचललोचनेव।। 43।।

मेघरूपी सूत्रधार के साथ बिजलीरूपी नदी आकाश की रंगशाला में आकर चपलनयना ललना की तरह हास्य करती हुई मानों नृत्य कर रही थी॥ 43॥

मन्ये मरुत्स्यन्दनवृन्दमिन्द्रानक्तंचराणामधिरुह्य मेघाः।
विद्युत्पताका वृषचापचापाः श्रीपदिमनीन्द्रं रुरुधुःसमेताः।। 44।।

मेघरूपी निशाचरों के मण्डल बिजलीरूपी पताका से युक्त पवनरूपी रथ पर आरूढ़ हो कर सुन्दर इन्द्रधनुष रूपी धनुष धारण करते हुए, कमलिनीकान्त सूर्य को घेर रहे थे॥ 44॥

हरित्तृणालंकृतधान्यदेशा नवेन्द्रगोपावलिमण्डितान्ता।
सत्पदम्रागाचिंतप्रान्तभागा बभौ मही तत्र हरित्पटीव।। 45।।

हरी–हरी घासयुक्त अनाजों के खेतों से शोभित प्रान्त–भाग में नये इन्द्रगोप (वीर बहूटी) कीड़ों से आच्छादित पृथिवी लाल रत्नों की सी मनोहर किनारीवाली हरी साड़ी की तरह चमक रही थी॥ 45॥

अनेकवर्णाम्बरचारुखण्डे शिखण्डिनो मेघमृदंगनादैः।
मृगांकखण्डाकृतिचन्द्रकालीं वितत्य नृत्यं विदधू रुवन्तः।। 46।।

www.thearyasamaj.org

अनेक रंगवाले सुन्दर प्रदेशों के गलीचे पर मेघरूपी मृदंग के नाद के साथ-साथ के कारव करते हुए कलापिमण्डल चन्द्रकला तुल्य अपने पंखों को फैला कर नाच रहे थे॥ 46॥

रोलम्बबिम्बालिविडम्बिभिस्ते जम्बूद्रुमा जम्बुफलैः परीताः।
स्फुत्कदम्बप्रसवाः कदम्बाअपीच्यशोभां कलयाम्बभूवुः।। 47।।

भ्रमर माला तुल्य जामुन के फलों से लदे हुए जामुन के वृक्ष और खिले हुए कदम्ब किसी अवर्णनीय शोभा को धारण कर रहे थे॥ 47॥

विनीय वर्षासमयं यमीन्द्रः केदारतीर्थे कमनीयकान्तिः।
रुद्रप्रयागादिविलोकनोत्कः पुण्यप्रभाते स ततः प्रतस्थे।। 48।।

दिव्य-कान्ति दयानन्द केदारघाट पर वर्षा ऋतु बिताकर रुद्रप्रयागादि स्थानों को देखने की इच्छा से उत्सुक हो, मंगलमय प्रभात में चल पड़े॥ 48॥

स वर्णिना साधुयुगेन सार्द्ध गच्छन् गिरौ शारदलिंगरम्याम्।
विलोक्य शैलेन्द्रभुवं प्रसन्नः प्रोवाच वाचंयम एवमार्यान्।। 49।।

स्वामीजी दो साधुओं और एक ब्रह्मचारी के साथ यात्रा कर रहे थे। वे रास्ते में फैली हुई शरद् ऋतु की सुन्दरता को देखकर उनसे इस प्रकार कहने लगे॥ 49॥

निरम्बुदं व्योम पवित्रमम्बु प्रभंजनो मानसरंजनोऽयम्।
वसुन्धरा सस्यमयी सुचन्द्रः किं नो प्रशंसन्ति शरद्गुणालिम्।। 50।।

हे साधुओ! बादल रहित आकाश, पवित्र जल, मनोरंजनकारी वायु, अनाजों से लहलहाते खेत, तथा सुन्दर चन्द्रिका क्या शरद् ऋतु के गुणों की प्रशंसा नहीं कर रही हैं॥ 50॥

नक्षत्रताराग्रहमण्डलानि मेघावलीपंकमलीमसानि।
प्रक्षाल्य मन्ये शरदा कृतानि प्रसन्नलक्ष्मीरुचिराण्यमूनि।। 51।।

मेघमाला की कीचड़ से मलिन नक्षत्र, तारा एवं ग्रहमण्डलों को इस ऋतु ने धोकर स्वच्छ कर दिया है॥ 51॥

नदीनदानां गिरिनिर्झराणां वारां घनानामिव वारणानाम्।
शाखामृगाणांच मदोद्धतानामौद्धत्यमेषां शरदा निरस्तम्।। 52।।

इस ऋतु ने नदियों, पर्वत के झरनों, मेघसमान मदमस्त हाथियों एवं वानरों की उद्धताई को दूर कर दिया है॥ 52॥

कादम्बिनीनाशवियोगखिन्नं कदम्बकं चन्द्रकिणां वनेषु।
विहाय बर्हाणि विनश्वराणि धत्ते समाधिं नु विरक्तचित्तम्।। 53।।

मेघमाला के वियोग से खिन्न मोरों का समूह जंगलों में पंखरूपी भूषणों को छोड़कर मानों विरक्त सा समाधि धारण कर रहा है॥ 53॥

-(शेष अगले अंक में)

www.thearyasamaj.org

योगेश्वर कृष्ण
विश्व-रूप

लेखकः पं. चमूपति

युद्ध प्रारम्भ हो गया। श्रीकृष्ण की सलाह से धृष्टद्युम्न पाण्डवदल का मुख्य सेनापति हुआ। अर्जुन, जिसके सारथि श्रीकृष्ण थे, सारी सेनाओं का संरक्षक बना। भिन्न-भिन्न अनीकों के अलग सेनापति भी थे। अर्जुन ने कृष्ण से कहा-"मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच में ले चलिये। जरा हम देखें तो सही, हमें किन-किन योद्धाओं से लड़ना है?" कृष्ण रथ को हाँक चले। अर्जुन ने जिधर दृष्टि डाली, उसे दोनों दलों में अपने सम्बन्धी-ही-सम्बन्धी दिखाई पड़े। कहीं दादा, कहीं चाचा, कहीं ताऊ, कहीं श्वसुर, कहीं साला, कहीं मामा, कहीं भानजा, कहीं पुत्र, कहीं भतीजा, कहीं गुरु, कहीं गुरुपुत्र। सभी तरफ यही दृश्य था। युद्ध इनसे होगा? ये एक-दूसरे का खून करेंगे? यह सोच के जी काँप उठा। जिनसे अस्त्र-शस्त्र चलाना सीखा, आज उन्हीं पर अस्त्र चलाने होंगे? जिन्हें आज तक बाबा कहते रहे, आज उन्हें मृत्यु बन ललकारना होगा? यह असम्भव है। फिर इस नरपिशाचता से लाभ क्या? यही न कि कुछ रोज राज्य करने को मिल जाएगा? गुरुजनों के लहू से लिथड़े ग्रास खाने से भूखों मरना अच्छा। इससे भिक्षा ही क्यों न माँग लें? फिर यह भी क्या निश्चय है कि विजय हमारी होगी? विजय किसी की भी हो, खून लाखों-करोड़ों का बह जाएगा। लाखों घर बरबाद हो जाएँगे। लाखों विधवाएँ जीतों की जान को बैठी रोएँगी। बड़ों को पानी-देवा भी कोई न होगा। कुल-स्त्रियाँ आचार-भ्रष्ट हो जाएँगी। वंशों की मर्यादा जाती रहेगी। जाति में कुलटाएँ, कुलघ्न, कुलक्षणी लोगों की भरमार होगी। युद्ध के ये परिणाम सिनेमा के दृश्यों की तरह अर्जुन के सम्मुख आन की आन में मूर्त्त होकर गुजर गए। अर्जुन को रोमांच हो आया। वह रथ ही में गाण्डीव छोड़कर बैठ गया। उसने कृष्ण को स्पष्ट कह दिया-मैं नहीं लड़ने का।

अर्जुन के इस विषाद का उपाय श्री कृष्ण ने गीता के उपदेश से किया। गीता संसार की अमर साहित्यिक कृतियों में से एक है। उसकी व्याख्या एक अलग ग्रन्थ चाहती है। हम उसकी व्याख्या अन्यत्र करने का विचार रखते भी हैं। यहाँ संक्षेप में उन दो-चार बातों की ओर संकेत किया जाएगा जिनका युद्ध से विशेष सम्बन्ध है।

श्री कृष्ण ने पहले तो अर्जुन को डाँटा उन्होंने स्पष्ट कहा कि यह वृत्ति वीरों की नहीं, भीरुओं की है। तू अपनी समझ में ज्ञान की बातें कर रहा है, वास्तव में यह ज्ञानी होने की विडम्बना-मात्र है। ज्ञान का मृत्यु के भय से क्या सम्बन्ध? मनुष्य दो चीजों का मेल है-एक आत्मा, दूसरा शरीर। शरीर है ही अनित्य।

www.thearyasamaj.org

आत्मा को कोई मार नहीं सकता; न इसका आदि है न अन्त। आत्मा का तो न जन्म होता है न मृत्यु, फिर मौत किसकी होगी? अध्यात्मवाद की इतनी ऊँची उड़ान न ले सके, उसे मौत अवश्य आनी है। होनी अनहोनी नहीं हो सकती। फिर मौत का शोक किसलिए? ज्ञान के मार्ग में तो किसी भी दृष्टि से सोचो, शोक का कोई स्थान नहीं। रहा कर्म का रास्ता, वह भी स्पष्ट है। तू क्षत्रिय है क्षत्रिय का कर्म है धर्म–युद्ध में प्राण लेना और प्राण देना। रण–भूमि ही क्षत्रिय का स्वर्ग है। फिर इससे हटना काहे को? रहा यह सन्देह कि हमारी विजय हो या उनकी, किसी की भी विजय हो। असंख्य विधवाएँ, असंख्य अनाथ, सन्तानहीन वृद्ध, असंख्य आचार–भ्रष्ट कुल और कुलांगनाएँ–एक शब्द में सारी जाति–की–जाति धर्म–कर्म–रहित हो जाएगी। यह अनधिकार चिन्ता है। मनुष्य का अधिकार है–कर्म कर दे। फल का निर्धारण उसके हाथ में नहीं। मनुष्य को कर्म करना ही फल की कामना से रहित होकर चाहिए। वास्तव में निष्काम कर्म ही सच्चा ज्ञान है, और ज्ञानपूर्वक क्रिया ही उत्तम क्रिया है। इस स्थान पर आकर ज्ञान और कर्म एक हो गए हैं। जब तक कर्म स्वार्थ–सिद्धि के लिए किया जाता है, तब तक वह बन्धन का, हृदय के संकोच का, दीनता अर्थात् दासता का हेतु रहता है। वही कर्म स्वार्थ के स्थान में यज्ञार्थ करो। उसका स्वरूप ही बदल जाता है। अब उसी कर्म से बन्धन नहीं स्वाधीनता, हृदय का संकोच नहीं फैलाव, दासता नहीं स्वाधीनता, स्वामित्व का भाव निष्पन्न हो जाता है। फल की मोहताजी ही मोहताजी है, और फल से बेपरवाही तो फिर बादशाही है। यज्ञ का अर्थ है–समष्टि के लिए कर्म करना। जिस संसार की मिट्टी से हमारा शरीर बना है, उसी के भले के लिए इस शरीर को लगा देना। ऐसा कर्म करने से मनुष्य एक–साथ संन्यासी (त्यागी) भी रहता है, योगी (कर्म–मार्ग का राही) भी। भीख माँगना ही संन्यास नहीं। तू क्षत्रिय है। तेरी शिक्षा–दीक्षा खून देने और लेने के लिए हुई है। कहलाना राजा, और तलवारों की झंकार सुनाई देने लगे तो गले में कफनी डाल देना–यह कौन–सा धर्म है?

इस उपदेश में जादू था। परन्तु अर्जुन पर आत्मीयता–परकीयता का मोह सवार था। अपनों के विरुद्ध शस्त्र कैसे उठाऊँ? यह चिन्ता चिता बनी जलाए डालती थी। उसने श्री कृष्ण की तर्कणा को सुना–अनसुना कर दिया। श्री कृष्ण ने देखा, यहाँ यह हथियार बेकार है। उस पर अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डालना चाहा। महाभारतकार कहते हैं–उन्होंने अर्जुन को दिव्यचक्षु दिया जिससे वह उनका विश्वरूप देख सके।

अर्जुन ने देखा–कृष्ण का एक मुँह नहीं, अनेक मुँह हैं; एक बाहु नहीं, अनेक बाहु हैं; अनेक नेत्र हैं; हजार सूर्यों की प्रभा एक कृष्ण में है। एक आग है कि आकाश–पाताल में छाई हुई है और उसमें दैव–दानव सब प्रवेश कर रहे हैं। कोई डरकर भागा जा रहा है, कोई हाथ जोड़े स्तुति कर रहा है। कराल काल मुँह खोले खड़ा है और मनुष्य, जैसे पतंगे प्रदीप की ज्योति पर, गिर–गिरकर भस्म हुए चले जाते हैं।

अर्जुन डर गया। उसने पूछा–महाराज! इस भयानक रूप का क्या अभिप्राय है? कृष्ण ने कहा–"यही कि मैं यम हूँ, लोक का क्षय करना चाहता हूँ। भीष्म, द्रोण आदि योद्धा मैंने तो मार ही दिये हैं। अब तू

www.thearyasamaj.org

चाहे लड़ चाहे न लड़, इनका अन्त मेरी युद्ध–बुद्धि ने कर दिया। मुझे अब एक निमित्त–बाहर का साधन चाहिए जो मेरे मानसिक–रण–क्षेत्र में हो चुकी घटना को भौतिक जगत् में प्रत्यक्ष कर दे। तेरी इच्छा हो तो तू ही निमित्त बन जा। इससे यश भी होगा, राज्य की प्राप्ति भी होगी। नहीं तो यह काम तो होकर ही रहेगा।''

इसके पश्चात् श्री कृष्ण ने इस भयानक चित्र में सौम्यता का अंश भी प्रविष्ट करा दिया। इस अंश में हर्ष का, अनुराग का प्राबल्य था। राक्षस भाग रहे थे, देवता प्रसन्न हो रहे थे। अर्जुन की जान में जान आई। डरा हुआ तो था ही, पर अब भक्ति भी उमड़ी। कृष्ण को सब ओर से, सब प्रकार से नमस्ते कर जीवन–भर की धृष्टताएँ क्षमा कराईं और कहा–महाराज! आज्ञाकारी सेवक हूँ।

यह विश्व–रूप क्या था? 'महाभारत' के शब्दों में 'दिव्यचक्षु' का चमत्कार। कृष्ण ने अर्जुन पर मोहिनी–सी डाल दी। दिव्यचक्षु या मोहिनी मनोवैज्ञानिक वस्तु है। इसकी व्याख्या भी मनावैज्ञानिक ही होनी चाहिए। अर्जुन अत्यन्त विषाद की अवस्था में था। उसे भीष्म, द्रोण आदि गुरुओं, दुर्योधन आदि बन्धुओं, लक्ष्मण तथा अभिमन्यु आदि पुत्रों की मृत्यु होनी प्रत्यक्ष दीख रही थी। श्री कृष्ण ने सबसे पहले प्रयत्न यह किया कि उसके हृदय में विषाद का विपरीत भाव–योग की परिभाषा में प्रतिपक्ष भावना–उद्बुद्ध की जाए। उन्होंने पहले अपना सारा युक्ति का बल लगाया। उसका यथेष्ट प्रभाव नहीं पड़ा। अब उन्होंने समझ लिया कि अर्जुन का भूत ज्यादः गहरा, ज्यादः मार्मिक है; ऊपर–ऊपर की तर्कणा से उतरने का नहीं। उन्होंने तर्कणा की थाह से कहीं अधिक गहरी चोट करनी चाही। भक्ति का स्थान युक्ति की पहुँच से बहुत दूर है। भक्ति आत्मा का मर्म है। श्री कृष्ण उपदेश करते–करते अपने वैयक्तिक वैभव की महिमा बखानने लगे। उन्होंने कहा–''संसार का आधार मैं हूँ। मेरी एक उँगली पर सारा चराचर जगत् नाचता है। कारण कि मैं चराचर का आत्मा हूँ। मेरा जीवन यज्ञ के अर्पण है। मेरी किसी क्रिया में स्वार्थ का अंश नहीं। मैं यज्ञ–रूप हूँ। समष्टि के अर्पण हूँ, अतः समष्टि मेरी है। मैंने सारे लोक को अपना लिया–अपना कर लिया है। अतः सारा लोक मेरे वश में है। मेरे कहे के बाहर तू कैसे होगा?'' अर्जुन की समझ में यह बात नहीं आई। हमारे जैसे हाथ–पाँव, हमारे जैसे सिर–पैर वाला, चार–एक हाथ का पुतला कृष्ण सारे जगत् का स्वामी–विश्व का संचालक–कैसे हो सकता है? श्री कृष्ण ने अर्जुन की आँख से आँख मिलाई। महापुरुषों की आँख की मोहिनी प्रसिद्ध है। नैपोलियन की आँख का तेज उसके बड़े–बड़े सेनापतियों के लिए असह्य हो जाता था। वे उसकी आँख से आँख नहीं मिला सकते थे। अर्जुन की आत्मा विषाद से निर्बल, अतः मोहिनी प्रभाव की पात्र–हो ही चुके थे, श्री कृष्ण के उपदेश ने उसके अन्तःकरण में गुह्य भावनाओं की एक परोक्ष हलचल–सी मचा दी थी। जब श्री कृष्ण ने अपनी अलौकिक शक्तियों का वर्णन प्रारम्भ किया तो उसकी बुद्धि स्तब्ध–सी हो गई। उसने सोचना छोड़ दिया। मोहिनी के प्रभाव का यही अवसर होता है। कृष्ण ने अपने कराल संकल्प को अपनी दृष्टि में केन्द्रित कर दिया। अर्जुन ने रणांगण में आते ही एक महान् श्मशान का चित्र तो अपनी आँखों के सामने फिरता देख ही लिया था। कृष्ण के अदम्य संकल्प ने

www.thearyasamaj.org

उसी बीभत्स नाट्य का सूत्रधार स्वयं कृष्ण को बना अर्जुन की विषादापन्न–कल्पना के चित्र का रंग और गहरा कर दिया। संसार के रंगमंच पर जितनी भी महत्त्वपूर्ण लीलाएँ हुई हैं, उनके सूत्रधार अनेक–मुख, अनेक–बाहु, अनेकों रूप, अनेक–नेत्र रहे हैं। जब तक वे उस लीला में लगे रहते हैं, तब तक सारे संसार की जिह्वाएँ उन्हीं को दुहराती हैं, मानो वे जिह्वाएँ उन्हीं की हो गई हैं। जन–साधारण की एक बहुत बड़ी संख्या में अपना बाहु–बल उनके अर्पण कर देती है। भक्त–जनों के नेत्र उन्हीं के नेत्रों से संसार के सभी दृश्यों को देखते हैं। यज्ञार्थ जीनेवाले–राष्ट्रों के निरहंकार कर्णधार–वास्तव में विश्व–रूप होते हैं। उन्होंने युद्ध का संकल्प कर लिया। फिर किसकी शक्ति है कि उससे बचे। जाति पर जाति, राष्ट्र पर राष्ट्र देखते–भालते, न इच्छा होते हुए भी , मृत्यु के मुख में सहसा प्रविष्ट हुए जाते हैं। वे कर्णधार उस समय सचमुच कराल काल बन जाते हैं। अर्जुन के सामने कृष्ण का वही रूप आया। कृष्ण का दृढ़ विश्वव्यापी संकल्प, जिसके अवश्यम्भावी प्रभाव से भारत का कोई राष्ट्र बच नहीं सका, घनीभूत हो अर्जुन के सामने मानो कृष्ण की विराट् विभूति बन गया। कवि की चमत्कारिणी लेखनी ने इस विभूति को और चमका दिया है। जो प्रभाव अर्जुन पर उस समय पड़ा था, वही आज पाठक के भावाविष्ट हृदय पर भी पड़ता है। वह कृष्ण के आगे वैसा ही विनम्र होकर झुक जाता है जैसा अर्जुन उस समय झुका था।

श्री कृष्ण का दृढ़ संकल्प पाण्डवों के वनवास के समय से लेकर युद्ध की समाप्ति तक 'महाभारत' के एक–एक पन्ने पर चित्रित है। युधिष्ठिर के राजपाट छोड़ जंगल जाने की तैयारी के समय जब द्रौपदी ने इनसे द्यूत का अमंगल समाचार कहा और अपने व्यथित हृदय को रो–रोकर इनके सम्मुख आँसुओं के रूप में पुंजीभूत कर दिया, तो इन्होंने सांत्वना देते हुए कहा–"भद्रे! आज तू रोती है, कल कौरवों की स्त्रियाँ अर्जुन के तीरों से जलते हुए पतियों को रोएँगी।" विराट् की सभा में जब द्रुपद ने सन्धि के प्रस्ताव के साथ–साथ युद्ध के भी पूरे उद्योग की मंत्रणा दी, तो इन्होंने इस विचार से सहमति प्रकट की और इस महान् उद्योग का कार्य द्रुपद के ही कंधों पर डाला। जब स्वयं दूत बनकर कौरवों की सभा में जाने लगे तो एक बार फिर द्रौपदी ने मर्म–भेदी शब्दों में पाण्डवों को युद्ध के लिए उकसाया। उसने अपने सुन्दर साँपों की तरह लहराते बालों को बाएँ हाथ से पकड़कर आँखों से आँसुओं की लड़ी गिराते हुए कहा–"यही वे बाल हैं जिन्हें दुःशासन के अश्लील हाथों ने भरी सभा में खींचा था। सखे! कृष्ण! जहाँ–जहाँ सन्धि का विचार सुनना, इन बालों को स्मरण कर लेना। यदि भीम और अर्जुन इतने क्षुद्र हो गए हैं कि इन्हें सन्धि के बिना चैन नहीं पड़ता था, तो मेरा बूढ़ा बाप अपने वीर पुत्रों की सहायता से अपनी अभागी पुत्री का बदला लेगा।" श्री कृष्ण ने इस समय भी वही उत्तर दिया जो इससे पूर्व दे चुके थे। उन्होंने कहा–"तू बहुत जल्दी कौरवों की स्त्रियों को रोती देखेगी। उनके सगे–सम्बन्धी मर जाएँगे और वे अनाथा होंगी। धृतराष्ट्र के पुत्रों का काल आ गया है। यदि उन्होंने मेरी न सुनी तो वे अवश्य भूमिशायी होंगे। उन्हें कुत्ते और शृगाल नोंच–नोंचकर खाएँगे। हिमालय अपने स्थान से हिले तो हिल जाए, पृथिवी टुकड़े–टुकड़े हो जाए तो हो जाए, तारे नीचे आ पड़ें तो आ पड़ें, मेरा कहा असत्य सिद्ध न होगा। कृष्णे! यह मेरी प्रतिज्ञा

www.thearyasamaj.org

है। तू रोना बन्द कर।''

हस्तिनापुर में पृथा के विलाप का उत्तर देते हुए श्री कृष्ण ने इसी भाव का प्रकाश किया था। बात यह है कि श्री कृष्ण दुर्योधन की हठीली प्रकृति को जानते थे। उन्हें पूरा निश्चय था कि वह साम, दाम, और भेद इन तीनों उपायों से मानेगा नहीं। उसका इलाज तो एक ही था–दण्ड। द्रुपद, सात्यकि, विदुर, द्रौपदी सबने यह ब्रात कह डाली। श्री कृष्ण ने कही नहीं, ध्यान में रक्खी। मनुष्य आशा के विपरीत भी आशा करता है। इनकी हार्दिक इच्छा थी कि सन्धि हो जाय; वृथा लोक–क्षय न हो; परन्तु अनुमान यही था कि सन्धि न होगी। हृदय एक बात के लिए प्रयत्न कर रहा था, मस्तिष्क दूसरी सम्भावना को उपस्थित किये देता था। अपने उपदेशानुसार इन्होंने फल की चिन्ता न कर सन्धि के लिए भरसक प्रयत्न किया। जब वह असफल हुआ तो कर्तव्य का मार्ग साधा–पूरे बल से युद्ध करना। इनके जीवन का लक्ष्य था सम्पूर्ण भारत को एक, बालात्काराश्रित नहीं, प्रीत्याश्रित साम्राज्य की छत्र–छाया में एकीभूत कर देना। ये इस लक्ष्य से रत्तीभर इधर–उधर न हो सकते थे। अर्जुन आदि इस लक्ष्य की प्राप्ति के साधन–मात्र थे। दुर्योधन अपने मंत्रिमण्डल–सहित इस साम्राज्य के रास्ते में कण्टक था। उसे और उस–जैसे सबको ये अपने संकल्प में अपने रास्ते से हटा चुके थे। गीता का विश्वरूप इसी विशाल संकल्प का दिग्दर्शन था। अर्जुन की समझ में घटना–चक्र की पेचीदगी–इस समय तक सारी उलझन–आ गई। उसने जान लिया कि अब लड़ने के सिवाय रास्ता ही नहीं। वह चक्रधर के चक्र पर बैठ गया। उसने गाण्डीव उठा लिया और सरल–स्वभाव बच्चे की तरह लड़ाई के मैदान में कूद पड़ा। लड़ते–लड़ते उसके हृदय में कोमल और कठोर भावनाओं के अनेक उतार–चढ़ाव हुए। विपरीत भावनाओं के वे विप्लव कैसे उठे, यह कथा आनेवाले प्रकरणों में वर्णित होगी। अर्जुन का सारथि बनकर श्री कृष्ण ने कैसे अपने लिए उपयुक्ततम स्थान का चुनाव किया था, यह कहानी भी उसी वर्णन के अन्तर्गत आएगी। ❁❁❁

सूचना

मई व जून 2011 व 2012 की दो माह की पत्रिकायें सर्दव की भांति गत वर्ष भी नहीं भेजी गई थीं। क्योंकि इन दो माह के बदले में विशेषांक प्रकाशित किया जाता है। अतः पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी कि वर्ष 2011 व वर्ष 2012 का विशेषांक 'नित्यकर्मविधि' के रूप में पाठकों को भेजा जा रहा है। विलम्ब तो हुआ है लेकिन आप निराश न हों शीघ्रातिशीघ्र वर्ष 2013 व वर्ष 2014 का विशेषांक भी आपको अवश्य ही भेजा जायेगा। मात्र डाकव्यय की वी. पी. पी. द्वारा ही यह विशेषांक पहुंचना संभव है इसलिये आपसे प्रार्थना है कि जैसे ही सत्यप्रकाशन से वी. पी. पी. आपके घर पहुँचे तो छुड़ाने का कष्ट अवश्य करें। ताकि आप और हम प्रसन्न रहें।

–व्यवस्थापक

www.thearyasamaj.org

ज्ञान कर्म संन्यास योग

लेखकः डॉ0 सोमदेव शास्त्री, मुम्बई

ज्ञान की परम्पराः–

श्रीकृष्ण अर्जुन के समक्ष कर्मयोग की चर्चा कर रहे हैं। कर्मयोग की परम्परा की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कह रहे हैं कि कर्मयोग का वर्णन कोई आज ही पहली बार तुम्हारे समक्ष नहीं हो रहा है। यह तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही चला आ रहा है। सर्वप्रथम इसको विवस्वान् ने सुना, उसने मनु को और मनु ने इक्ष्वाकु को बतलाया है। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त यह ज्ञान आज मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। गीता के इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि ज्ञान की परम्परा प्राचीन है। ज्ञान नैमित्तिक है दूसरों से प्राप्त होता है। हम अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त करते हैं। गुरु ने अपने गुरु से और उन्होंने भी अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त किया। जितना पीछे चलते जाते हैं तब अन्त में प्रश्न होता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में ज्ञान किससे प्राप्त होता है। तब सभी शास्त्रों का एक ही उत्तर है जो योगदर्शन के अनुसार है कि वह परमात्मा ही गुरुओं का गुरु है। उसी ने सृष्टि के प्रारम्भ में प्राणिमात्र के कल्याण के लिये ज्ञान दिया है। इसलिये भारतीय परम्परा में 'वेद' को ईश्वरीय ज्ञान माना जाता है। जिसको प्राप्त करके ऋषियों ने पठन–पाठन, सुनने सुनाने की परम्परा प्रारम्भ की। तत्पश्चात् विभिन्न विषयों पर विभिन्न ग्रन्थों की रचना हुई।

अवतार शब्द की अर्थः–

जब–जब संसार में विनाशकारी तत्व प्रबल हो जाते हैं सज्जनों को परेशान किया जाता है और दुष्टों का प्रभाव बढ़ने लगता है समाज में अनेक बुराइयां प्रारम्भ हो जाती हैं तब–तब उनका विरोध करने के लिये या उनको नष्ट करने के लिये ऐसी शक्तियां प्रकट हो जाती हैं जो संसार को अन्धेरे से निकालकर प्रकाश में खड़ा कर देती हैं। औरंगजेब और अकबर के अत्याचारों को नष्ट करने के लिये शिवाजी और महाराणा प्रताप का प्रादुर्भाव हुआ। यज्ञों में भयानक पशु हिंसा और नरबलि को समाप्त करने के लिये बुद्ध आये। भयंकर नास्तिकता का मुकाबला करने के लिये शंकराचार्य के रूप में एक विभूति आयी। अन्धविश्वास और रूढ़ियों से ग्रसित मानव समाज को निकालने के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार जब–जब सामाजिक–धार्मिक या राजनैतिक संकट उपस्थित होता है तब उसको दूर करने के लिये जो शक्तियां प्रादुर्भूत होती हैं उसे गीताकार ने 'अवतार' शब्द से सम्बोधित किया है।

ईश्वर का अवतार नहींः–

कतिपय विद्वानों के अनुसार इस प्रसंग से विदित होता है कि ईश्वर अवतार लेता है किन्तु तर्क और

www.thearyasamaj.org

प्रमाणों के अनुसार ये विचार युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता है क्योंकि बिना शरीर धारण किये ईश्वर संसार बनाता है तो केवल मात्र दुष्टों के विनाश के लिये सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् ईश्वर को शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सर्वव्यापक परमेश्वर एकदेशी गर्भ में नहीं आ सकता। किसी पदार्थ को बनाने में अधिक शक्ति और योग्यता की आवश्यकता होती है किन्तु उसी पदार्थ को नष्ट करने में उतनी शक्ति और योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है। घड़ी को बनाने में अधिक योग्यता और मेहनत की जरूरत है किन्तु घड़ी को फेंककर एक छोटा बच्चा भी खराब कर सकता है या तोड़ सकता है। यदि परमात्मा ने बिना शरीर धारण किये ही सृष्टि की रचना की तथा दुष्टों को पैदा किया है तो बिना शरीर के उनका विनाश भी कर सकता है। एक भूकम्प के झटके में क्षणमात्र में हजारों लाखों व्यक्तियों को वह मार सकता है। इसलिये रावण तथा कंसादि दुष्टों को मारने के लिये परमात्मा को शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जो जीवात्मा दुष्टों का नाश करते हैं उन्हें मानव समाज ही युगपुरुष, महापुरुष या देवपुरुष कहकर सम्बोधित करने लग जाता है। जिसके लिये गीताकार ने 'अवतार' शब्द का प्रयोग किया है।

कर्म–विकर्म–अकर्म का अर्थः–

गीता के कर्म–विकर्म और अकर्म की चर्चा करते हुए लिखा है कि कर्म की गति गहन है। हमें यह जान लेना चाहिये कि कर्म क्या है? यह भी जान लेना चाहिये कि विकर्म क्या है? तथा यह भी जान लेना चाहिये कि अकर्म क्या है? जो करने योग्य है वह कर्म, तथा विपरीत कर्म को विकर्म और न करने को अकर्म कहते हैं। कर्म में नित्यकर्म जैसे सन्ध्यावन्दन, माता–पिता की सेवादि, नैमित्तिक कर्म जैसे घर आये हुए अतिथि का स्वागत करना, तथा 'काम्यकर्म' किसी कामना की पूर्ति के लिये कर्म करना है जैसे धन कमाने के लिये किसी से नौकरी दिलाने के लिये निवेदन करना आदि।

विनोबा भावे ने 'विकर्म' का अर्थ विपरीत कर्म न करके 'विशिष्ट कर्म' यह अर्थ किया है। उनके अनुसार जब किसी कर्म को हम अपनी अन्तःप्रेरणा से, स्वेच्छा से, अपना धर्म या कर्तव्य समझकर करते हैं तब वह कर्म, कर्म नहीं होता अपितु विशिष्ट कर्म अर्थात् 'विकर्म' हो जाता है। जब हमारा कर्म, विकर्म हो जाता है तब कर्म करने वाले को कर्म को भार या उसके करने की मेहनत का बोझ प्रतीत नहीं होता है। उस कर्म के परिश्रम के फल की आकांक्षा भी मन में नहीं रहती है तभी हमारा वह कर्म अकर्म बन जाता है। ऐसा लगता है जैसे मानों हमने यह कर्म किया ही नहीं है। तब उसके फल की आसक्ति अपने आप समाप्त हो जाती है और वह निष्काम बन जाता है।

निष्काम कर्मयोगी का जीवनः–

इस प्रकार निष्काम कर्म का गीता सन्देश दे रही है। उदाहरण के लिये यदि किसी के कहने पर कोई चित्रकार चित्र बनाता है तो उसको उस चित्र को बनाने में फल की आकांक्षा रहती है और यदि चित्रकार

www.thearyasamaj.org

स्वेच्छा से किसी चित्र को बना रहा है तो उस चित्र को बनाने में फल की आकांक्षा वह दूसरों से नहीं रखता है यही उसका कर्म-विकर्म कहलाता है और आकांक्षा रहित होने से एक तरह से अकर्म बन जाता है। जिसे निष्काम कर्म कहते हैं। निष्काम कर्म करनेवाले का जीवन कैसा हो जाता है इस विषय में गीता में लिखा है कि कर्म के फल के प्रति आसक्ति को त्याग कर नित्य प्रसन्न रहकर कर्म के फल पर आश्रित न होकर किसी भी कार्य में संलग्न रहे वह ऐसा ही है जैसे कुछ भी नहीं कर रहा है। जो व्यक्ति सहज प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट है, सुख दुःख आदि द्वन्द्वों से परे पहुंच गया है जो ईर्ष्या से रहित है, सफलता असफलता में समभाव से रहता है। वह कर्म करता हुआ भी कर्म बन्धन से नहीं पड़ता है। जो व्यक्ति कर्म के फल की आसक्ति से मुक्त हो गया है जिसका चित्त ज्ञान में अवस्थित हो गया है जो अपने प्रत्येक कर्म को यज्ञ समझकर करता है अर्थात् जीवन को एक प्रकार का यज्ञ समझकर करता है तो जीवन को यज्ञ समझकर करने से कर्म के बन्धन में नहीं पड़ता है। एक तरह से उसके सारे कर्म विलीन अर्थात् फल रहित हो जाते हैं अनुकूल या प्रतिकूल फल उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालते हैं। निष्काम कर्म करनेवाला कर्मयोगी हमेशा अपने आप में सन्तुष्ट रहता है वह सुख दुःखादि द्वन्द्वों में समभाव से रहता है और दोनों अवस्थाओं में समभाव से रहनेवाला ही रागद्वेषादि से रहित होता है क्योंकि वह जीवन में प्रत्येक कर्म को यज्ञ समझकर परार्थ (दूसरों के उपकार) के लिये कर रहा है। ऐसे ही व्यक्ति को गीता ने पण्डित कहा है।

विविध यज्ञः-

अनासक्त भाव से कर्म करने वाला व्यक्ति अपने जीवन को यज्ञ समझकर कर्म करता है। यज्ञ की चर्चा करते हुए गीता में इसी अध्याय के 24वें श्लोक से लेकर 32वें श्लोक तक अनेक यज्ञों की चर्चा की है जैसे ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, ज्ञानयज्ञ, प्राणयज्ञादि को जाननेवाले यज्ञविद् यज्ञ करते हैं, जो यज्ञ के रहस्य को जानते हैं जिनका जीवन ही यज्ञमय हो जाता है ऐसे लोगों के पाप नष्ट हो जाते हैं। जो लोग यज्ञ से अवशिष्ट अमृतरूपी भोजन का सेवन करते हैं वे सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति यज्ञ नहीं करता है उसके लिये यह लोक नहीं के बराबर है। दूसरा लोक तो उसे कहाँ से प्राप्त हो सकता है?

ज्ञानयज्ञ सर्वश्रेष्ठः-

ाएउ इन सभी यज्ञों का वर्णन करते हुए गीता में लिखा है कि द्रव्ययज्ञ की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि सब कर्म जाकर 'ज्ञान' में समाप्त होते हैं। क्योंकि द्रव्ययज्ञ के द्वारा अपनी सारी सम्पत्ति को लोक कल्याण-परोपकार में लगाकर ब्रह्म को प्राप्त करना है किन्तु जब तक ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा तब तक उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? इसलिये 'ज्ञानयज्ञ' के द्वारा सारी अविद्या को समाप्त करके ब्रह्म के स्वरूप को जानना, जिससे ब्रह्म की प्राप्ति हो सके इसलिये **'ज्ञानयज्ञ'** को श्रेष्ठ बतलाया है। जिस प्रकार यज्ञ परोपकार अर्थात् दूसरों के कल्याण की दृष्टि से किये जाते हैं, याज्ञिक व्यक्ति अपने आपको परार्थ

www.thearyasamaj.org

समर्पित कर देता है। उसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियाँ संयम की अग्नि में समर्पित हो जाती हैं। तब व्यक्ति का जीवन आदर्श हो जाता है, मानो उसकी इन्द्रियाँ संयमाग्नि में होम कर रही हैं। यह भी बिना ज्ञान अर्थात् तत्त्वज्ञान के द्वारा नहीं होता है क्योंकि जब तक विषय वासनाओं का यथार्थ ज्ञान और आत्मा के स्वरूप का यथार्थ बोध न हो तब तक इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है।

गुरु से ज्ञान की प्राप्तिः–

सभी यज्ञों में ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है किन्तु **'तत्त्वज्ञान'** स्वतः तो प्राप्त नहीं होता है इसको प्राप्त करने के लिये योग्य गुरु की आवश्यकता होती है। जो इसको सम्यक् रूप से जानता हो और इस पर आचरण भी करता हो किन्तु गुरुजनों से ज्ञान किस प्रकार से प्राप्त किया जाता है इस विषय में गीता ने शिष्टाचार का अत्युत्तम वर्णन किया है। इस विषय में लिखा है कि यह ज्ञान गुरुओं के चरणों में प्रणिपात से अर्थात् उनके सम्मुख सिर झुकाने से, निष्कपट भाव से नम्रता पूर्वक उनसे प्रश्न तथा शंका समाधान करने से, गुरुओं की सेवा करने से मनुष्य जान सकेगा। जब तुम ऐसा करोगे तब तत्त्वदर्शी ज्ञानी गुरुजन इस ज्ञान का तुम्हें उपदेश देंगे। अर्थात् तत्त्वज्ञानी गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करना है तो नम्रता पूर्वक उनकी सेवा करते हुए और चरणों में बैठकर ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। उद्दण्डता और डण्डे के बल से कोई भी विद्या नहीं प्राप्त कर सकता है। शास्त्रों में उल्लेख है कि उदण्डअशिष्ट और कुटिल आचरण करने वालों को विद्या दान नहीं देना चाहिये। उसी परम्परा का निर्वाह गीता कर रही है।

ज्ञान प्राप्ति का लाभः–

ज्ञान से बढ़कर संसार में इस पृथ्वी पर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इसी विषय में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि "हे अर्जुन! जैसे अग्नि प्रदीप्त होने पर इंधन को भस्मसात् कर देती है वैसे जब ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो जाती है तब वह सब कर्मों के बन्धनों को भस्मसात् कर देती है। ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति बन्धन से मुक्ति को प्राप्त करता है। यजुर्वेद में भी लिखा है कि विद्या (ज्ञान) से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। श्रद्धावान् व्यक्ति ही ज्ञान को प्राप्त करता है और वह भी ज्ञान के लिये दिन रात प्रयत्न करता है, जब अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है तब ज्ञान प्राप्त करता है और तुरन्त परम शान्ति को प्राप्त करता है, किन्तु जो स्वयं नहीं जानता और गुरुजनों के प्रति जिसकी **श्रद्धा** भी नहीं है, हर बात में सन्देह करता है ऐसा **संशय** अर्थात् संदेह करने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है। ऐसे संशय करने वाले व्यक्ति के लिये न तो यह लोक है और न ही परलोक है और ऐसा व्यक्ति सुख को भी नहीं प्राप्त कर सकता है इसलिये हे अर्जुन! अज्ञान से उत्पन्न होनेवाले, हृदय में बैठे हुए संशय को आत्मा के ज्ञानरूपी तलवार से काटकर योगमार्ग में लग जा और युद्ध के लिये खड़ा हो जा। इस प्रकार अर्जुन के मोह को दूर करते हुए कर्म करने की प्रेरणा दी।"

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

सरलगतिः

लेखकः स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती

दृष्टान्तमुखेन सुबोधाय सरलगतिः

दृष्टान्तो के द्वारा सुगम बोध के लिए सरलगति का निरूपण किया जाता है, यद्यपि यह सत्य है कि पशु-पक्ष्यादि कभी मनुष्य के समान आलाप नहीं किया करते तो भी उनके उदाहरणव्याज से मनुष्यसमाज को यदि अपने सँभलने का ध्यान हो तो उन्नति का मार्ग दृष्टिपथ में आने लगता है।

कभी एक सिंह जल के न मिलने से तृषा से आतुर था, जल की ढूँढ़ में इधर-उधर भ्रमण करता था, जंगल में एक जलस्थल मिला। प्रसन्नता से उसमें प्रवेश करता हुआ कुछ आगे बढ़ा। उसमें कीचड़ अधिक था, सिंह के चारों पग पंक में फँस गये, निकलने का यत्न तो बहुत किया, परन्तु निकलने के लिए विवश था। तृषा का खेद तो दूर हुआ, परन्तु क्षुधा का कष्ट सताने लगा। कुछ समय के पश्चात् एक शृगाल निकट से गुजरा। उसके दर्शन से उसकी आहार-लिप्सा अधिक हो गई, सिंह ने उसको प्रेम से कहा-अरे भतीजे! मेरी बात सुनते जाना, यह कहकर बुलाया। उसने प्रेमपूर्ण वचन को सुनकर सिंह को कहा-बताओ क्या कहते हो? उसने कहा कि तुम भय मत करो, तुम्हारा पिता और मैं परस्पर भ्राता हैं, उसने कहा था कि यदि कहीं मेरा पुत्र तुमको मिले तो उसे अपने वक्षस्थल में लेकर प्यार करना। अतएव मेरे निकट आकर तुम मुझसे मिलो। गीदड़ को भय था। उसने कहा कि मैं तेरे समीप तो नहीं आ सकता यदि कुछ सन्देश कहना है तो कह दो। सिंह ने कहा कि तुम भय मत करो, मेरे समीप आ जाओ, तुम मेरे जिगर के टुकड़े हो, मैं किसी प्रकार तुमसे धोखा नहीं करूँगा। मैं शपथ-कसम खाता हूँ कि यदि मैं छल करूँ तो उसका फल मेरी सन्तान के आगे आये। गीदड़ कुछ सरक कर बोला कि मैं इससे अधिक तुम्हारे पास कदापि नहीं आ सकता। सिंह ने विचारा कि अब यह धूर्त्त मेरे पास तो नहीं आएगा, अब यही हो सकता है कि बल से कूदकर इसके ऊपर गिरना चाहिए। उस सरोवर के तट पर एक वृक्ष जो आँधी से टूट गया था, तेज नोकों से उसका स्कन्ध खड़ा था। सिंह गीदड़ को पकड़ने की इच्छा से जो कूदा, उसकी ओर न जाकर वृक्ष की नोकों पर जा गिरा, विवश होकर वहाँ ऊपर ही जा लटका। गीदड़ ने उसको विवश जानकर पूछा-कहो छल किया और फल मिला। सिंह ने उससे पूछा कि मित्र! ठीक मैंने तुमसे छल तो किया, उसका फल मेरी सन्तान को मिलना चाहिए था मुझे ही कैसे मिला? यदि तुझको पता हो तो कुछ भेद बता। गीदड़ ने कैसा अच्छा उत्तर दिया कि सुन, यह फल जो तुमको प्राप्त हुआ है, तेरे पिता ने कसम खाकर छल किया था उसका है, तेरी शपथ का फल तो तेरी सन्तान के आगे आना शेष है।

निष्कर्ष:- भारत प्रजा ने मिथ्या विश्वास, निन्दित रीति का कब से साथ दिया है, इसका पता लगाना तो कुछ कठिन-सा प्रतीत होता है, परन्तु इसका आभास सिंह-शपथ के समान है। एक श्रेणी से दूसरी तक, उससे तीसरी तक चला ही आता है, जब तक कोई सन्तति बल से इसका विच्छेद न कर देगी, तब तक आनेवाली सन्तान का यथार्थरूप में सुधार होना मनोरथमात्र ही है। पैतृक सम्पत्ति के समान विचार-सम्पत्ति भी अनायास सन्तान तक पहुँचती है, अतएव वह रीति और नीति जो मनुष्यसमाज की विपत्ति को बढ़ाने और सम्पत्ति को घटानेवाली हो, उसका त्याग करना ही शुभ संवाद है। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

धूर्त जन

रचयिताः ओमप्रकाशसिंह, सिकन्दराराऊ, जिला–हाथरस (उ० प्र०)

(31)

हे धूर्तो! तुमने हीरो बनने के चक्कर में,
इन हिन्दुओं को सदा नष्ट करवाया है।
तुमसे ही पिता–चाचा भारत के बन गये,
उन्हीं से हिन्दुओं पर बुरा वक्त आया है।
किसी ने लंगोटी पहनी, किसी ने टोपी ओढ़ी,
इन हिन्दुओं को विधर्मियों से कटवाया है।
उन धूर्तो ने अपनी जिद को रखा शेर,
बटवारा होके भी ये हिन्दू पछताया है।

(32)

धूर्तो! तुमने राष्ट्र भक्तों की सदा उपेक्षा की,
इस हिन्दू को हिन्दुस्तान में ही सताया है।
खुद को युग पुरुष बनाने के चक्कर में,
इस हिन्दू का पूरा सत्यानाश कराया है।
तुम्हारे ही कर्मों से इन हिन्दुओं पै सदा,
दुर भाग्य छाया और दुर्दिन भी छाया है।
ओ तुम जैसे धूर्त ही हिन्दुओं के नेता हुए,
हायरे अभागे हिन्दू तू न चेत पाया है।

(33)

हे धूर्तो! भारत को राष्ट्र नहीं रहने दिया,
इसको ही बना दिया एक धर्मशाला है।
हिन्दुओं को पूरी तरह श्री हीन कर दिया,
उसी की जवान पर लगा दिया ताला है।
ये हिन्दु तो तुम्हारे ही करमों से रोया सदा,
तुम्हारी मोज मस्ती को बनी मधुशाला है।

www.thearyasamaj.org

इसे कटवाते रहे लुटवाते रहे सदा,
फिर भी तुम्हारा मुँह होता नहीं काला है।

(34)

मुस्लिमों ने हिन्दुओं से भारत को बंटाया था,
फिर मुस्लिम सुविधा का खेला क्यों खेल है।
यदि जोर से श्वांस ले हिन्दू होता साम्प्रदायक,
हे धूर्तो! बताओ क्या तुम्हारी बुद्धि फेल है?
भारत न बटा होता, देते तुम सुविधा तो,
आता समझ में कि हिन्दू मुस्लिम मेल है।
धूर्तो! तुम्हारे कर्मों से मुस्लिम चाक चंगे हैं।
इन हिन्दुओं का तो निकला सारा तेल है।

(35)

हे धूर्तो! बताओ तुमने इस हिन्दू के लिये,
सुख औ समृद्धि के क्या कभी आयाम दिये।
भारती भाड़ में जाय, सत्ता बस बनी रहे,
बांट के हिन्दुओं को स्वार्थ के ही काम किये।
हिन्दू धर्म बदल के मुस्लिम ईसाई बने,
बताओ रोकने को तुमने क्या व्यायाम किये।
यह भी बताओ इस राष्ट्र का क्या सोचा हित?
बस सत्ता बनाये रखी और विश्राम लिये।

(36)

धूर्तो! तुमने शायद कुरान को पढ़ा नहीं,
पढ़िये कुरान को तो समझ आ जायेगा।
अध्ययन करोगे जब कुरान हदीसों का,
तुम्हारी बन्द बुद्धि का पट खुल जायेगा।
उदारवादी बनो या गाली दो हिन्दुओं को,
फिर भी इस्लाम नहीं माफ कर पायेगा।
वहाँ तो विरोधियों को केवल लिखा काटना,
तुम्हारे भी माँस को वो नोंच नोंच खायेगा।

❀❀❀

www.thearyasamaj.org

वैदिक विज्ञान में रासायनिक ऊर्जा

CHEMICAL ENERGY IN VEDIC SCIENCE

लेखकः कृपालसिंह वर्मा, 253 शिवलोक, कंकरखेड़ा, मेरठ (उ0 प्र0)

कुछ तरल पदार्थों की रासायनिक क्रिया में विद्युत ऊर्जा उत्पन्न होती है। सभी प्रकार की विद्युत बैटरी तथा सैल से जो विद्युत शक्ति मिलती है वह रासायनिक क्रिया की देन है। हमें भोजन से जो प्राण रूप विद्युत ऊर्जा मिलती है, वह भी रासायनिक क्रियाओं से ही मिलती है। वेद में रासायनिक ऊर्जा को 'अपान्नपात्' कहते हैं अर्थात् अपान्नपात = Chemical Energy ऋग्वेद में दसवें मण्डल के 30वें सूक्त का चौथा मंत्र महर्षि यास्क ने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है–

''यो अनिध्मो दीदयदप्सु अन्तर्य विप्रास ईड़ते अध्वरेषु।
अपान्नपान्म धुमतीरपो दायाभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय।।''

महर्षि यास्क की व्याख्याः–

''यः अनिध्मः 'दीदयदं' दीप्यसं अभ्यन्तरम्–अप्सु
यं मेधाविनः स्तुवन्ति यज्ञंषु सः अपान्नपात्
मधुमति अपो देही अभिषवाय यामि इन्द्रो वर्धते 'वीर्याय' वीर कर्मणो।।''

अर्थ– ''जो बिना ईंधन के जलती है, जो तरल पदार्थों के अन्दर रासायनिक क्रियाओं से प्रकट होती है, जिसे वैज्ञानिक ऋषि यज्ञ रूप रासायनिक क्रियाओं से प्राप्त करते हैं, उस 'अपान्नपात्' अर्थात् Chemical Energy कहते हैं। जो प्राणियों को मधु से समान सुख देने वाली होती है, जिससे इन्द्र अर्थात् विद्युत शक्ति, प्राण शक्ति बढ़ती है, जिससे अनेक पराक्रम युक्त कार्य किये जाते हैं।''

मंत्र का अर्थ–

(i) ''यः अनिध्मो दीदयदप्सु अन्तर्य''
वह रासायनिक ऊर्जा अर्थात् विद्युत जो अप्सु अर्थात् तरल पदार्थों के भीतर बिना ईंधन से जलती है।

(ii) ''विप्रास इड़ते अध्वरेषु।''
विप्रासः अर्थात् वैज्ञानिक रासायनिक ऊर्जा को 'अध्वरेषु' अर्थात् वैज्ञानिक अनुष्ठानों द्वारा प्राप्त करते हैं।

(iii) ''अपान्नपान्मेधुमतीरपो दायाभिः।''
'अपन्नपात् अर्थात् रासायनिक ऊर्जा अपः अर्थात् जलों से रासायनिक क्रियाओं द्वारा प्राप्त होती है।

(iv) ''इन्द्रो वावृधे वीर्यायः।''
तरल पदार्थों की रासायनिक क्रियाओं से इन्द्र अर्थात् विद्युत शक्ति प्राप्त होती है जिसका उपयोग वीर्याय अर्थात् शक्तिशाली कार्य करने के लिए किया जाता है। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

संकल्प शक्ति का चमत्कार

लेखकः महात्मा ओम्मुनि वैदिक भक्ति साधना आश्रम, रोहतक (हरि0)

प्रत्येक मानव के व्यक्तित्व और उसकी सफलता के पीछे मुख्य भाग उसकी सकल्प शक्ति का ही होता है। बिना संकल्प शक्ति के किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। केवल दृढ़ संकल्प शक्ति से एक से एक बढ़कर चमत्कार दिखलाये जाते हैं। संकल्पशक्ति ही मनुष्य के जीवन में उन्नति और अवनति का कारण होती है। उपनिषद् की श्रुति के अनुसार, **'संकल्पमयोऽयं पुरुषः'** अर्थात् मनुष्य संकल्प का ही बना हुआ है। भगवान् मनु का कथन है–

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसम्भवः। व्रतनियमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः।

अर्थात् सब प्रकार की कामनाओं का मूल यह संकल्प है। यज्ञ संकल्प से उत्पन्न होता है। व्रत–नियम– धर्म सब इसी संकल्प से उत्पन्न होने वाले माने गये हैं।

आज हमें जितने भी महापुरुष दिखाई पड़ते हैं, जिनका नाम संसार में आदर से लिया जाता है, उनके जीवन को उच्च और पवित्र बनाने का कारण संकल्प शक्ति ही है। यजुर्वेद के 34वें अध्याय के छः मंत्रों में बार–बार यही प्रार्थना की गई है–**"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"** अर्थात् वह मेरा मन पवित्र व शुभ संकल्प वाला हो। जैसे–

ओं यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दुरंगम ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसकल्पमस्तु।। 1।।

जो दिव्य मन जाग्रत अवस्था में दूर निकल जाता है और इसी प्रकार सोने की दशा में भी बहुत दूर जाने वाला ज्योतियों की ज्योति अर्थात् इन्द्रियों का प्रकाशक वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ओं येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 2।।

कर्मशील, मनीषी, धीर पुरुष जिसके द्वारा परोपकार क्षेत्र में तथा जीवन संघर्ष में बड़े–2 कार्य कर दिखाते हैं, जो समस्त प्रजाओं (इन्द्रियों) के अन्दर एक अपूर्व पूज्य सत्ता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ओं यत् प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते। तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 3।।

जो नये–2 अनुभव कराता है, जो समस्त इन्द्रियों के अन्दर एक अमरज्योति है, जिसके बिना कोई कर्म नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ओं येनेहे भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 4।।

जिस अमृत मन के द्वारा यह भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान जाना जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

www.thearyasamaj.org

ओं यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तँसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 5।।

जिसमें ऋचाएँ, साम, यजु इस प्रकार टिके हुए हैं जैसे रथ की नाभि में अरे, जिसमें इन्द्रियों की सारी प्रवृत्ति पिरोयी जाती है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

ओं सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। 6।।

अच्छा सारथी जिस प्रकार वेगवान् घोड़ों को बागों से पकड़कर चलाता है, उसी प्रकार जो मनुष्यों को लगातार चलाता रहता है, जो हृदय में रहने वाला है, वह मेरा मन शुभ संकल्पों वाला हो।

प्रारब्ध कर्म संकल्प द्वारा ही क्रियमाण होते हैं, जैसे कहा जाता है–**''विनाशकाले विपरीत बुद्धि'** इसलिए मनुष्य यदि अपने संकल्पों को विशुद्ध रखे और जब वह मलिन व अपवित्र होने लगे तब यह जानकर कि मुझ पर कोई विपत्ति आने वाली है, तत्काल अपने संकल्प और विचारों को शुद्ध और पवित्र बनाले तो दुर्भाग्य उसे कभी भी भयभीत नहीं कर सकेगा। यदि पवित्र विचारों वाले मनुष्य पर अचानक कोई विपत्ति आ भी जाये तो उस बोझ को दूसरे लोग सहायक बनकर बाँट लेते हैं अर्थात् उसके सहायक बन जाते हैं। इसके विपरीत बुरे व्यक्ति पर आये संकट में कोई सहायक नहीं बनता अपितु उल्टे बढ़ाने वाले अनेकों हो जाते हैं। जो मनुष्य अपने जीवन में दुःखों को कम करने की इच्छा करता है तो उसको चाहिए कि वह अपनी संकल्प शक्ति में वृद्धि करे और उसका सदुपयोग करना सीखे।

उगते हुए नए पौधें को उखाड़ना आसान है, किन्तु उसके बड़ा वृक्ष बन जाने पर उसे जड़ से उखाड़ना मनुष्य की शक्ति से बाहर जो जाता है। ठीक उसी प्रकार उत्पन्न होते हुए संकल्पों को उखाड़ना और उनके स्थान पर शुद्ध व पवित्र संकल्पों की रचना/निर्माण अत्यन्त सुगम होता है। अतः जो व्यक्ति उठते हुए बुरे संकल्पों को उसी समय मिटा देता है वह उससे सम्बन्धित कर्म और उसके दुःखरूपी कर्मफल से बच जाता है। इसीलिए तो वेद मंत्रों में बार–2 प्रार्थना की गई है कि मेरा मन पवित्र व शुभ संकल्पों वाला हो।

संकल्प विद्या की शक्ति का पूरा–2 अनुभव करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि संसार के प्रत्येक पदार्थ में ये शक्ति विद्यमान है। आज तक जितनी मानसिक शक्ति जैसे–मैमोरिज्म, हिप्नोटिज्म, टैलीपैथी, स्प्रिचुअलिज्म आदि मनुष्य को ज्ञात हुई है, उन सबमें यही अलौकिक शक्ति काम करती है। जल में तरंगों की तरह शब्द की तरंगें भी दूर–2 तक जाती हैं। आकाश के सूक्ष्म मण्डलों (ईश्वर) पर संकल्प की तरंगें दौड़ती है, काम करती है और दूर–2 तक पहुँच जाती है। ईश्वर की शक्ति जो आकाश में विद्यमान है, हमारे मस्तिष्क में भी विद्यमान है। निरन्तर विचार से उसमें गति उत्पन्न होती है और वे उसी प्रकार निकलती है जैसे विद्युत की तरंगें निकलती हैं। जिन विचार तरंगों के साथ संकल्पशक्ति नहीं होती वे शीघ्र नष्ट हो जाती है और जिन विचार तरंगों के साथ संकल्पशक्ति का बल होता है, वे रूकावटों और विरोध के होते हुए भी उस समय तक निरन्तर दौड़ती रहती है जब तक उनको अनुकूल विचारों वाला मन न मिल जाये, जो उस विचार के साथ सहानुभूति और अनुकूलता रखता हो।

यदि घृणा या शत्रुता के विचार इसी संकल्पशक्ति की सहायता से किसी के लिए भेजेंगे तो वे विचार जीवितशक्ति बन जायेंगे और वे जब तक निरन्तर दौड़ते रहेंगे तब तक कि उसके मन तक न पहुंच जायें जिसके लिए भेज गये थे। इसके अतिरिक्त वे अन्य बहुत से मनों के अन्दर भी अपना प्रतिबिम्ब छोड़ जाते हैं। प्रेम का जो

www.thearyasamaj.org

प्रत्येक विचार बाहर जाता है, अपने परिणाम में प्रेम की पूरी शक्ति लेकर उसी के पास वापस आ जाता है, इसीलिये यह कहावत है कि–'**मन का मन साक्षी है।**' क्योंकि आकाश में अनेक प्रकार के विचार चक्कर लगाते रहते हैं और जिस प्रकार के विचारों की मनुष्य में ग्रहण करने की प्रकृति होती है, उसी प्रकार के विचारों को आकाश से अपनी ओर खींच लेता है। जैसे जितनी तरह के बीज भूमि में बोये जायेंगे वे सब अपने–2 अनुकूल परमाणुओं को ही भूमि से खींचेंगे। यदि कोई बुरा विचार मन में उत्पन्न हो जाये तो फिर उसी प्रकार के विचारों की लड़ी मन में बन जाती है और वह तब तक बन्द नहीं होती जब तक की स्वयं मनुष्य अपनी प्रबल संकल्पशक्ति से अपने मन को उस ओर से रोक न ले। आकाश में अच्छे से अच्छे और बुरे से बुरे विचार विद्यमान हैं, केवल उन विचारों को ग्रहण करने के लिए एकाग्रचित्त होकर उस ओर मन को लगाना पर्याप्त है। जब तत्त्वदर्शी किसी विषय या पदार्थ पर विचार करता है, तब उसी सम्बन्ध में नई–2 बातें उसके मन में उठने लगती है और ये ऐसी बातें होती हैं जो स्वयं सोचने वालों के लिए भी सर्वथा नई व विस्मित/आश्चर्यजनक होती है।

अध्यात्म विद्या के आचार्य जब अपने किसी शिष्य से कोई काम करवाना चाहते हैं, तब अपने विचारों को उसके मन में रख देते हैं। ये विचार उसके अन्दर पहुँचकर उसको वही कार्य करने की प्रेरणा करते हैं। यही मानसिक प्रेरणा है, यही गुप्त आध्यात्मिक सम्बन्ध और आत्मिक सहायता है, जो पूर्व के सन्त–महात्मा अपने शिष्यों के साथ रखते थे। यदि हम किसी के प्रति बुरे विचारों की भावना करेंगे तो वे वहाँ दुःख और घृणा के विचारों की भावना करेंगे तो वे अधिक मात्रा लेकर लौटकर हमें मिलेंगे और यदि प्रेम व स्नेह के विचार भेजेंगे तो वे भी अपना प्रभाव डालकर अधिक प्रेम उत्पन्न करेंगें। इसी कारण से हमारा मन जिससे घृणा करता है, वह भी उसी प्रकार हमसे घृणा करेगा और जिसके प्रति हम प्रेम विचार करते हैं, उसके मन में भी हमारे प्रति प्रेम के विचार उत्पन्न होंगे। शास्त्रों में तो प्रत्येक मनुष्य को जीव मात्र की भलाई के लिए उपदेश दिया है यथा–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।

अर्थात् सभी जीवों को सुख प्राप्त हो, सब प्राणी नीरोग हों, सबका कल्याण हो, किसी को भी दुःख न हो।

जब एक मनुष्य अपने अन्दर से सभी जीवों के प्रति शत्रुता के विचार निकालकर सभी की भलाई और सबके सुख की प्रार्थना करता है, तब उसको उसके बदले में विश्वमात्र का प्रेम प्राप्त होता है और तब संसार का कोई पदार्थ उसके लिए दुःखदायी नहीं रहता।

अतः हम सब को सब की सुख–समृद्धि व शान्ति की कामना के लिए प्रातः सायं संकल्पशक्ति के साथ, **"ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः, सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि।"**

हे सर्वरक्षकः प्रभो! द्युलोक शान्तिमय है, अन्तरिक्ष शान्तिमय है, पृथिवी शान्तिमय है, जल व प्राण शान्तिदायक है, सभी औषधियाँ सुखदायी हैं, सब विद्वान् लोग उपद्रवनिवारक हैं, आपकी वेदवाणी सुखदायी है, सभी वस्तुएँ शान्तिकारक हैं, स्वयं शान्ति भी शान्तिमय है। प्रभु! वही शान्ति मुझ उपासक को भी प्राप्त होवे।

इसी प्रकार विचार व संकल्पशक्ति के साथ प्रतिदिन समस्त जीव मात्र के कल्याण की प्रार्थना करनी चाहिए, इससे हम सबका भला होगा। वास्तव में हमारी दुनिया वह नहीं है जिसको हम मानते हैं, बल्कि वह है जिसका हम विचार करते हैं, संकल्प करते हैं। मानव विचारों का पुतला है जैसे इसके विचार होते हैं वैसा ही वह

www.thearyasamaj.org

बन जाता है। अतः मनुष्य को निराशावादी न होकर सदैव सद्विचारों के साथ आशाजनक, प्रसन्नता, स्वास्थ्य और सफलता के विचारों को शुभ संकल्प के साथ मन में धारण करना चाहिए। सुख और आशा की तरंगें ही रक्त की गति पर उत्तम प्रभाव डालेगी और शुद्ध तथा लाल करके स्वास्थ्य के सुप्रभाव को पूरे शरीर को बांट देंगी।

धार्मिक और लौकिक दोनों विषयों में मनुष्य उतना ही सफल होता है जितना उसका संकल्प दृढ़ होता है। यदि कोई किसी कार्य में असफल है, इसका कारण उसका दुर्भाग्य नहीं बल्कि उसके संकल्प की निर्बलता है। मनुष्य के अन्दर यह बहुमूल्य गुप्त शक्ति ऐसी है कि जो कोई इससे काम लेना शुरू कर देता है उसको वह महान् बना देती है। मानव के संकल्प में अद्भुत शक्ति है, यदि आप जीवन में सफल होना चाहते हैं तो इस शक्ति को अपने अन्दर उत्पन्न और विकसित करें। इसलिए जो मनुष्य जैसा बनना चाहता है, उसको दृढ़ संकल्प के साथ अपने अन्दर वैसे ही विचार उत्पन्न करने चाहिए। जब मनुष्य अपने शुभ संकल्प व दृढ़ विचार के साथ खड़ा हो जाता है तब कोई वस्तु उसको अपने उद्देश्य से नहीं रोक सकती। ऐसे पुरुषार्थी मनुष्यों की सहायता के लिए प्रकृति अपना कार्य करती है। एक साधारण पुरुष भी अपनी आत्मिक संकल्प शक्तियों से काम लेकर बाद में महान् बन जाता है। संसार में ऐसे बहुत से महापुरुष हुए हैं जो साधारण व्यक्ति से महान बन गए। महर्षि दयानन्द सरस्वती को साधारण साधु से वर्तमान काल के ऋषि बनाने वाली उनकी संकल्पशक्ति ही थी। समस्त भारतवर्ष उनके विचारों से विरोध रखता था, परन्तु जब वह मनस्वी एक बार अपने क्षेत्र पर आरूढ़ हो गया तो कोई भी मनुष्य उनके सम्मुख खड़ा न हो सका। इसका कारण उनकी अगाध विद्या ही नहीं थी, बल्कि दृढ़ संकल्पशक्ति और उस शक्ति में पूर्ण विश्वास होना था। इसी संकल्पशक्ति के सहारे श्री लालबहादुर शास्त्री व इब्राहिम लिंकन जैसे साधारण मनुष्य भी महान् व्यक्ति बन गये।

दृढ़ और बलवान संकल्पशक्ति के कारण मनुष्य में ऐसी योग्यता आ जाती है कि वह अपने विचारों को बहुत बड़ी शक्ति दे सकता है। अपने लक्ष्य पर फिर वह अपने विचार को उस समय तक स्थिर रखता है, जब तक उसका अभीष्ट प्राप्त नहीं हो जाता। जो अपना दृढ़ विचार बनाकर फिर दूसरों की दृढ़ सम्मति के कारण उसे बदल देता है तो उससे भी उसकी हीन संकल्पशक्ति का पता लगता है कि वह दूसरों की सम्मति का दास है। उसे कदम-2 पर असफलता देखनी पड़ती है। इसीलिए संकल्पशक्ति का महत्व समझना चाहिए, किन्तु हठ, दुराग्रह और उच्छृंखलता को ही संकल्प या विचार शक्ति नहीं समझ लेना चाहिए। संकल्प शक्ति और हठादि में महान अन्तर है। पहला आचार की दृढ़ता और श्रेष्ठता का प्रतीक है और दूसरा उसकी निर्बलता का परिणाम है।

संकल्पशक्ति को पूरा विकास देने के लिए दृढ़ आत्म विश्वास की आवश्यकता है और आत्मविश्वास की दृढ़ता आस्तिकता अर्थात् ईश्वर भक्ति से होती है। जब मनुष्य सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ ईश्वर पर पूर्ण विश्वास और उसका सहारा लेकर सभी कार्यों को उसके समर्पण करते हुए अनासक्त और निष्काम भाव से उसके लिए ही अपने को केवल उसका एक साधन समझकर कर्त्तव्य करता है तो उसकी स्वयं अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियाँ भी अगाध और असीम हो जाती है। यही कारण है कि ईश्वर भक्तों द्वारा जो महान् कार्य और अद्भुत चमत्कार अनायास साधारणतया प्रकट हो जाते हैं, उनके अनुकरण करने में संसार की सारी भौतिक शक्तियाँ अपना बल लगाकर भी असमर्थ रहती है।

अतः सत्पुरुषों के सारे संकल्प, इच्छायें ईश्वर के समर्पण और उसी की प्रेरणा से होते हैं, इसीलिए वे जो संकल्प करते हैं, वे पूर्ण होते हैं॥ इत्योम शम्॥

www.thearyasamaj.org

'विवाहों के अप्रासंगिक रीति–रिवाज और उन पर भारी व्यय'

लेखकः मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला–2 देहरादून

आज के आधुनिक युग में विज्ञान द्वारा नित्य प्रति नई–नई चीजों की खोज की जा रही है जिनसे नये पदार्थ व आवश्यकता की उपयोगी चीजें बनती हैं जिन्हें गृहस्थी अपनी दैनन्दिनी सुविधा के लिए अपनाते हैं। फिर इन उत्पादों के निर्माता इनकी बिक्री बढ़ाने के नाना प्रकार के उपायों से इसका प्रचार व प्रसार करते हैं। इनको अपनाकर न केवल हमारे दैनन्दिन जीवन में हमारा व्यय ही बढ़ता है अपितु हमारा बहुमूल्य समय भी इन वस्तुओं के विक्रय, प्रयोग व रखरखाव में व्यतीत हो जाता है, इसी कारण जीवन के बहुत से आवश्यक कार्य यथा **स्वाध्याय, सेवा, परोपकार आदि छूट जाते हैं या इन के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया पाता।** बहुत से लोग आर्यसमाज को जानते, मानते व इसके अनुयायी हैं परन्तु उनसे यदि पूछें कि क्या वह नियमित रूप से सन्ध्या, हवन, पितृ यज्ञ, स्वाध्याय व साधना आदि वैदिक नित्य कर्मों व कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं तो शिकायत मिलती है कि समयाभाव एवं मंहगाई के कारण इन कार्यों के करने में मुख्य बाधा है जिससे इन दैनिक वैदिक कर्तव्यों को नहीं कर पाते हैं। **हमें अपने परिवारों में यथासमय व अवसरों पर अपनी युवा सन्तानों के विवाह आदि कार्यों को करना पड़ता है। आज के समय में विवाह का सम्पादन अनेक बड़े कार्यों में सम्मिलित है जिन पर प्रभूत व्यय होता है। आवास निर्माण एवं बच्चों की शिक्षा–दीक्षा की तरह विवाह का सम्पादन भी अति व्यय साध्य है। कई लोग साधनों की कमी के कारण विवाह व्यय से या तो भारी कर्जदार हो जाते हैं या फिर इन कार्यों को कर ही नहीं पाते।**

विवाह आदि कार्यों पर भारी व्यय क्यों किया जाता है? क्या किए जाने वाले सब कार्यों को करने का शास्त्रों में विधि–विधान एवं उपयोगिता है। या अपने अज्ञान व प्रचलित कुरीतियों की देखा–देखी करते हैं? जहां तक हमारा अध्ययन है, शास्त्रो में तो केवल विवाह क्या है? क्यों किया जाता है? और विवाह संस्कार के विधि विधान क्या है? केवल इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला गया है। **विवाह संस्कार के विधि विधान को पुरोहित या विद्वान् आचार्य द्वारा मात्र**

हम यह भी अनुभव करते हैं कि यदि विवाहों का वर्तमान खर्चीला स्वरूप जारी रहा तो इसका समाज पर बहुत बुरा असर होगा। आज भी इनके प्रचलन से समाज में नाना प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो गईं हैं जिनका उपचार अनावश्यक खर्चीले कार्यों को बन्द करके ही किया जा सकता है। ऐसा होने पर समाज के लोग अपनी सन्तानों के विवाह हेतु धन जुटाने के अनुचित कार्य नहीं करेंगे और न ही मानसिक तनाव में रहेंगे। गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित, योग्य सन्तानों का सरल व आधुनिक वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न होने पर वर–वधु का भावी जीवन सुखद एवं शान्तिपूर्वक व्यतीत हो सकता है।

2–3 घंटे में सम्पन्न होना और इसका न होना विवाह का न होना होता है। कराया जाता है। एतदर्थ संस्कार में प्रयुक्त द्रव्यों एवं पुरोहितजी की दक्षिणा पर कुछ व्यय होता है जो कि धनी व निर्धन सरलता

www.thearyasamaj.org

से कर सकते हैं। यज्ञ के द्रव्यों में हवन सामग्री, घृत, मधु, दही, वर–वधु के वस्त्र और वह भी सामान्य व वैदिक संस्कृति के अनुरूप ही होते हैं। **जिन कार्यों पर आजकल अधिक व्यय किया जा रहा है वह है, किसी होटल आदि में धूमधाम से सगाई के नाम पर भारी व्यय करना, होटल या वैड़िग प्वाइष्ट का किराया, प्रीतिभोज में बड़ी संख्या में अनेक प्रकार के व्यजंन व पकवान बनवाना, भारी भरकम साज–सज्जा करना, वर–वधू व परिवार वालों की मंहगीं वेशभूषायें, वधू के स्वर्णाभूषण व वर पक्ष के निकट सम्बन्धियों को स्वर्णाभूषण एवं मंहगें वस्त्रों को देना, नगद धनराशि वर पक्ष की मांग होने पर देना, वर–पक्ष की मांग होने या स्वयं ही घर, फ्लैट, भूमि का टुकड़ा, कार देना, अनावश्यक बैण्ड–बाजा, ढोल आदि बजवाना व लोगों को शराब पिलाना, आदि कार्य हैं जो हमारी दृष्टि में अनावश्यक हैं। इन पर किया जाने वाला व्यय अपव्यय है जो समाज में परम्पराओं व संस्कृति को विकृत करता है एवं भ्रष्टाचार व गलत कार्यों को बढ़ावा देने के साथ समाज में विषमता पैदा करता है। इन कार्यों के करने से कुछ समय की वाहवाही अवश्य होती है परन्तु बाद में मध्यम व निम्न वर्गीय परिवारों को आर्थिक तंगी के कठिन दौर से गुजरना पड़ता है जिसका परिवार की सुख–शान्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इस पर भी कोई गारण्टी नहीं कि वर–वधू का वैवाहिक जीवन व दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर व शास्त्र अनुमन्य होगें तथा दोनों परिवारों में परस्पर समरसता होगी।** यदि विवाह में किए जाने वाले अनावश्यक कार्य व व्यय न किए जायें और जो धन आसानी से व्यय किया जा सकता है, वह वर वधू के जीवन को सुस्थापित करने वा बाद में बच्चों की शिक्षा व अन्य कार्यों के लिए बैंक आदि में जमा करा दिया जाये तो इससे वर वधू को कहीं अधिक लाभ हो सकता है। बैंक में जमा किये धन का राष्ट्रीय कार्यों में उपयोग होता है जिससे देश शक्तिशाली बन सकता है। कुछ बुद्धि वर्ग के लोग ऐसा करते भी हैं परन्तु ऐसे लोगों की संख्या अत्यल्प होने के कारण समाज पर इसका अनुकूल प्रभाव नहीं हो रहा है। इसका एक प्रमुख कारण समाज का अज्ञान, कुरीतियों, कुसंस्कारों व अन्धविश्वासों से पल्लिवित व पोषित होना व वेदों के विपरीत आचरण होना। यदि किसी विवाह में कोई निकट का समझदार सम्बन्धी इन अनावश्यक कार्यों के विरूद्ध टीका–टिप्पणी करता है तो उसे बुरा माना जाता है और वह सबकी आलोचनाओं का केन्द्र बन जाता है। परिवार के सभी छोटे–बड़े उसकी आलोचना कर उसे अनुचित ठहराते हैं और जो लोग मूकदर्शक बन कर उसे देखते रहते हैं, वह सम्मानीय व समझदार माने जाते हैं।

विवाह संस्कार की पूरी रीति व विधि क्या हो? इस पर विचार करना प्रासंगिक है। सर्वप्रथम तो वर व वधु के विवाह का प्रस्ताव एक दूसरे परिवार को पहुंचने का मुख्य कार्य है। इसके लिए दोनों पक्षों के परिवार प्रयास कर उसे वर्तमान पद्वति से हल कर सकते हैं। विवाह सम्बन्ध को निश्चित करने के लिए दोनों पक्षों के वरिष्ठ व बुद्धिमान लोग मिलकर उस वैवाहिक सम्बन्ध के गुण–दोष व उसके उपयुक्त व अनुपयुक्त होने पर विचार करें। यदि उपयुक्त लगे तो कन्या व युवक को उसके बारे में बतायें व उनकी सम्मति प्राप्त करें। कन्या व युवक की सम्मति प्राप्त होने पर दोनों पक्ष एक दूसरे के कुल, व्यवहार व सामाजिक जीवन, मान, प्रतिष्ठा आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर लें। यदि सब कुछ अनुकूल पड़े, तो भावी वर–वधू का वार्तालाप कराकर उसके पश्चात् परस्पर सुविधानुसार कोई तिथि निश्चित करें और

www.thearyasamaj.org

दोनों के लिए सुविधाजनक स्थान पर विवाह का आयोजन करें। किसी एक स्थान पर जहां दोनों पक्षों के लोग एकत्रित हो सकते हैं और उनके भोजन व आवास आदि की व्यवस्था हो सकती है, वहां दिन में लगभग 4–5 बजे अपरान्ह एकत्रित हों। वैवाहिक आयोजन में उपस्थित प्रमुख व्यक्तियों का शिष्टाचार एवं स्वागत कर दोनों पक्षों के मुख्य सम्बन्धियों आदि का परिचय दिया जाये। इस अवसर पर आवश्यकतानुसार जलपान की व्यवस्था की जा सकती है। आपसी परिचय का यह कार्य पुरोहित व दोनों पक्षों के योग्य पुरुष व स्त्री कर सकते हैं। वहीं पुरोहितजी वर व वधू का विवाह संस्कार आरम्भ करा दें **जो गोधूलि वेला में चलकर शीघ्र समाप्त हो जाये।** अनुमानतः विवाह संस्कार सायं 7.00 से 7.30 बजे के बीच समाप्त हो जायेगा। उसके बाद उसी स्थान पर भोजन कक्ष में प्रीतिभोज आरम्भ किया जा सकता है। भोजन समाप्त कर सभी लोग वर वधू से मिलकर उनको अपनी शुभकामनायें और आशीर्वाद दे कर जा सकते हैं और वर व वधू पक्ष के लोग व सम्बन्धी भी स्वगृहों व विश्राम के स्थानों पर जाकर शयन कर सकते हैं। **यदि विवाह को दोपहर में समाप्त करना हो तो फिर यह सब आयोजन 10 बजे पूर्वान्ह से आरम्भ कर इसे दोपहर 2.00 बजे तक समाप्त किया जा सकता है।** विवाह में सम्मिलित आमंत्रित लोग यदि चाहें तो वर–वधू को सस्ते, उपयोगी व अच्छे उपहार या कुछ नगद धनराशि दे सकते हैं। इस अवसर पर वर व वधू पक्ष अपनी शक्ति व सुविधा के अनुसार कुछ धनराशि नव–दम्पत्ति के बैंक खाते में लम्बी अवधि के लिए जमा कर सकते हैं जिससे भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर काम आये। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसमें वर पक्ष का वधू पक्ष पर कहीं कोई प्रेरणा व दबाब न हो। विवाह स्थल पर यदि चाहें तो संगीत आदि का आयोजन हो सकता है परन्तु उसका प्रभाव सात्विक होना चाहिये। **इस अवसर पर किसी प्रकार से मद्यपान करना व पुरुषों व स्त्रियों का सड़कों पर बारात के रूप में या विवाह स्थल पर शोर शराबे वाले फिल्मी गीतों के साथ नृत्य करना अनुचित एवं आपत्तिजनक है। यह अपसंस्कृति एवं मर्यादाओं का हनन है जिसका सभी बुद्धिमान स्त्री–पुरुषों को विरोध करना चाहिये।** हमारा यह भी विचार है कि इस अवसर पर विवाह संस्कार के आरम्भ होने से कुछ समय पूर्व किसी योग्य विद्वान के प्रवचन का आयोजन भी किया जा सकता है। जिसमें वह प्रभावशाली ढंग से विवाह की व्याख्या कर वैवाहिक जीवन में पति व पत्नी के कर्तव्य पर सारगर्भित प्रकाश डाले। वक्ता महानुभाव अपने व्याख्यान में आज के रीतिरिवाजों की खामियों को भी अपने प्रवचन के विषय में सम्मिलित करें और उसमें उन बिन्दुओं पर मुख्य रूप से प्रकाश डाले जिन बातों को लेकर समाज में आलोचना या विरोध किया जा सकने की सम्भावना हो जिससे बाद में किसी को आलोचना का अवसर न मिल सके। सामूहिक भोज में इस बात का विशेषरूप से ध्यान रखा जाये कि भोजन सात्विक व स्वास्थ्यप्रद हो वा सीमित संख्या में व्यंजन बनाये जायें जिससे अधिक आर्थिक बोझ वर या वधू पक्ष पर न पड़े। यह बहुत ही आवश्यक है कि विवाह के उपलक्ष्य में किसी भी प्रकार से मद्यपान का आयोजन नहीं किया जाना चाहिये। संगीत के नाम पर आजकल जो आर्केस्ट्रा आदि का प्रयोग कर फिल्मी गीतों को तेज ध्वनि से सुना जाता है व डांस किया जाता है, वह हमारे धर्म व संस्कृति

विवाहों के अवसरों पर बाजारों, सड़कों व वैवाहिक स्थलों पर बाल–युवा व वृद्ध स्त्रियों को पुरुषों के साथ नृत्य या डांस कदापि नहीं करना चाहिये, इससे हमारा सांस्कृतिक पतन होना सुनिश्चित है। वैदिक संस्कृति संसार की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। वह ऐसे कृत्य करने की कदापि अनुमति नहीं देती। इससे हमारा नैतिक पतन होता है और चारित्रिक गिरावट आती है। इसके अनेक भावी दुष्परिणाम भी होते हैं।

www.thearyasamaj.org

से विपरीत कार्य है जो कि नहीं होना चाहिये। जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें विचार कर लेना चाहिये अथवा वैदिक विद्वानों से पता कर लेना चाहिये कि जो रजो व तमोगुण प्रधान कार्यकलाप किए जाते हैं, उनके दुष्परिणाम भविष्य में क्या-क्या हो सकते हैं। **हमारा स्वाध्याय व चिन्तन करने के बाद यह परिणाम सामने आया है कि ऐसा करने से मनुष्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है। समाज में एक गलत उदाहरण बनता है जिससे मध्यम व अल्प आय वालों के लिए समस्यायें आती हैं। उसके साथ आध्यात्मिक दृष्टि से उनका यह कार्य शुभ कर्म न होकर अधिक अशुभ न सही परन्तु होता अशुभ ही है।** हम जानते हैं कि हमारी इन पंक्तियों को लिखने का कोई विशेष प्रभाव समाज पर पड़ने वाला नहीं है क्योंकि आज का समाज रजो व तमों गुणों से परिपूर्ण अज्ञान, कुरीति व अन्धविश्वासों पर आश्रित है। हमारा कर्तव्य इन पंक्तियों को लिखने के लिए हमें प्रेरित कर रहा है। हमारा अनुमान है कि समाज में ऐसे बहुत से लोग देखे जाते हैं जो विवाह में होने वाले अनावश्यक कार्य एवं व्यय की चर्चा तो करते हैं परन्तु इस पर कुछ ठोस नहीं कर पाते। ऐसे लोगों को यह प्रयास अच्छा लगेगा और पता नहीं किसी को इन पंक्तियों से कोई अन्य लाभ भी हो सकता है।

हमारा स्वास्थ्य व चिन्तन करने के बाद यह परिणाम सामने आया है कि ऐसा करने से मनुष्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है। समाज में एक गलत उदाहरण बनता है जिससे मध्यम व अल्प आय वालों के लिए समस्यायें आती हैं। उसके साथ आध्यात्मिक दृष्टि से उनका यह कार्य शुभ कर्म न होकर अधिक अशुभ न सही परन्तु होता अशुभ ही है।

हम यह भी अनुभव करते हैं कि यदि विवाहों का वर्तमान खर्चीला स्वरूप जारी रहा तो इसका समाज पर बहुत बुरा असर होगा। आज भी विवाहों के व्ययसाध्य आयोजन से समाज में नाना प्रकार की समस्यायें व विकृतियाँ उत्पन्न हो गई हैं जिनका उपचार अनावश्यक खर्चीले कार्यों को बन्द करके ही किया जा सकता है। ऐसा होने पर समाज के लोग अपनी सन्तानों के विवाह हेतु धन जुटाने के लिए अनुचित कार्य नहीं करेंगे और न ही मानसिक तनाव में रहेंगे। गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित योग्य सन्तानों का सरल व आज भी प्रासंगिक वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न होने पर वर-वधू का भावी जीवन सुखद एवं शान्तिपूर्वक व्यतीत हो सकता है। **हम यहां यह भी कहना चाहते हैं कि आज यह बात सभी के समझने की है कि हमें अपनी शारीरिक व वित्तीय सामर्थ्य बढ़ानी चाहिये जो कि शुद्ध विचारों, व्यायाम, स्वास्थ्यप्रद भोजन, पुरुषार्थ से धनोपार्जन, घरेलू कार्यों में कम व्यय के मूल मंत्र को अपनाकर ही सफल हो सकते हैं। अखाद्य पदार्थों यथा मद्य, मांस, तला हुआ व अधिक संख्या में पकवानों व व्यंजन के प्रयोग से स्वास्थ्य को हानि होनी निश्चित है।**

विवाहों के अवसरों पर बाजारों, सड़कों व वैवाहिक स्थलों पर बाल-युवा व वृद्ध स्त्रियों को पुरुषों के साथ नृत्य कदापि नहीं करना चाहिये, इससे नैतिक पतन के साथ हमारा सांस्कृतिक पतन होना भी निश्चित है। वैदिक संस्कृति संसार की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। वह ऐसे कृत्य करने की कदापि अनुमति नहीं देती। इससे चारित्रिक गिरावट भी आती है एवं इसके अनेक दुष्परिणाम भी होते हैं। हमारा निजी अनुभव है कि विवाहों में मद्यपान कर स्त्री पुरुषों के साथ डांस करने से कई बार तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है और वहां हिंसा आदि की सम्भावना बनती है जिसे उपर्युक्त प्रकार से विवाह आयोजित करके दूर किया जा सकता है।

हम समाज के सभी वर्गों के बन्धुओं से प्रार्थना है कि वह शान्त मन स इस लेख की समस्त बातों पर विचार करें और उचित को अपनायें और अनुचित को तत्काल छोड़ दें। ❀❀❀

www.thearyasamaj.org

"महर्षि दयानन्द दो बार नहीं तीन बार रोए"

लेखकः खुशहालचन्द्र आर्य, महात्मा गांधी रोड, दो तल्ला, कोलकाता

स्वामी दयानन्द जिनका बचपन का नाम मूलशंकर था उनके पिता कर्षण तिवारी शिव के भक्त थे, इसलिए उन्होंने मूलशंकर की चौदह वर्ष की आयु में ही शिवरात्रि के दिन उपवास रखवाकर अपने साथ शिव मंदिर ले गये। जब अर्द्धरात्रि हुई तो सभी शिव भक्त उनके पिता जी सहित तथा पुजारी लोग भी गहरी नींद में सो गये, परन्तु मूलशंकर शिव के दर्शनार्थ आँखों में पानी के छींटे मार-मार कर जागता रहा। तभी वह एक कोतुहल देखता है कि कुछ चूहे शिव की मूर्ति पर चढ़कर, उसके ऊपर जो भाग का सामान रखा हुआ था उसे खाने लगे और वहीं पर काफी उछल-कूद भी करने लगे। जब मूलशंकर ने यह दृश्य देखा तो उसके मन में शिव के प्रति अश्रद्धा के भाव जाग उठे और सोचने लगे कि जो शिव चूहों से अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता है तो वह हमारी क्या रक्षा करेगा? यह भाव उत्पन्न होते ही मूलशंकर ने उपवास तोड़ने का निश्चय करके अपने पिताजी को जगा कर सब बातें बता दी। पिताजी ने कहा कि सच्चा शिव तो कैलाश में रहता है, यह तो शिव की मूर्ति है। यह सुनकर मूलशंकर का मन सच्चे शिव की खोज करने के लिए मचल उठा और उपवास तोड़ने के लिए घर आकर माँ से रोटी मांगी और माँ ने अपने लाड़ले बेटे को भूखा देखकर रोटी खिला दी। यहाँ से हुआ मूलशंकर का मूर्ति के प्रति अनास्था भाव का होना और सच्चे शिव को पाने की इच्छा का प्रारम्भ होना। सोलह वर्ष की आयु में मूलशंकर की बहन का निधन हो गया। इस मृत्यु पर मूलशंकर बिल्कुल भी रोये नहीं, केवल पूरा दृश्य देखता रहा और मृत्यु क्या है और उसके ऊपर कैसे विजय प्राप्त की जा सकती है, यह सोचता रहा। घर वालों ने उसे रोता न देखकर पत्थर हृदय तक कह दिया फिर भी मूलशंकर रो नहीं पाया। जब मूलशंकर उन्नीस वर्ष का हो जाता है तब उसका चाचा जो उसे अत्यधिक प्यार करता था, उसकी मृत्यु हो गई। इस मृत्यु को मूलशंकर सहन नहीं कर सका और वह फूट-फूटकर रोया। यह था स्वामी जी का प्रथम रोना।

इसके बाद स्वामी ज दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पहला सच्चे शिव की खोज और दूसरा मृत्यु पर विजय पाने के लिए अपनी बाईस वर्ष की आयु में घर से निकल पड़े। चौदह वर्षों तब स्वामी जी अपने उद्देश्यों को पाने के लिए भारी दु:खों, कष्टों व अभावों को सहते हुए, नदी-नाले, पहाड़-जंगल सभी को लांघते हुए भारत के कौने-कौने को छान डाला, फिर छत्तीस वर्ष की आयु में स्वामी जी, स्वामी पूर्णानन्द जो स्वामी विरजानन्द के गुरू थे, उनके बताने से सद्गुरु विरजानन्द के पास पहुँचे। वहाँ उन्हें अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की पूरी सम्भावना हो गई। यहाँ आने से पहले स्वामी जी, एक ब्रह्मचारी से ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर नैष्ठिक ब्रह्मचारी बने और नाम "शुद्ध चैतन्य" रखा। फिर एक दक्षिणी योग्य संन्यासी

www.thearyasamaj.org

जिसका नाम पूर्णानन्द था, उससे संन्यास की दीक्षा लेकर ''स्वामी दयानन्द'' नाम रखवा लिया था जो अन्त तक रहा। स्वामी जी ने अपने सच्चे गुरु विरजानन्द के पास लगभग तीन साल रहकर, यह जान लिया था कि वेद, ईश्वरीय ज्ञान है, इसके अनुसार चलने से यानि अच्छे कर्म व अष्टांग योग करते हुए अपने जीवन को पवित्र बनाकर तथा मृत्यु के भय से भयभीत न होकर अपने जीवन को सुखी बनाना और मृत्यु के बाद मोक्ष प्राप्त करना ही सच्चे शिव की प्राप्ति तथा मृत्यु पर विजय पाना है जिनकी प्राप्ति के लिए स्वामी जी ने घर छोड़ा था।

स्वामी जी गुरु विरजानन्द के पास आने से पहले भी एक रोमांचिक घटना इस प्रकार घटी थी कि स्वामी जी गंगा के किनारे अपनी ध्यानावस्था में बैठे हुए थे, अचानक उनको नदी में कुछ पड़ने की आवाज सुनी जिससे उनकी ध्यानावस्था टूटी तो देखते क्या हैं कि एक महिला अपने लाड़ले बच्चे के शव का कफन उतारकर बच्चे को गंगा में डालकर वापस आ रही है। स्वामी जी ने महिला से पूछा, माताजी! आप गंगा में क्या डाल कर आई हो और यह भी भीगा हुआ कपड़ा कैसा है? तब माताजी ने कहा, स्वामी जी! मैं एक अति गरीब विधवा महिला हूँ। मेरे इकलौते पुत्र की मृत्यु हो जाने पर मैंने अपनी साड़ी के दो टुकड़े करके एक टुकड़े से मेरी लाज बचाई और एक टुकड़े से बच्चे को ढककर यहाँ लाई थी। उस बच्चे का कफन उतार कर, बच्चे को गंगा में बहाकर, कफन को साथ लाई हूँ ताकि स्नान करने के बाद यह कफन वाला टुकड़ा मेरी लाज बचा सके। यह सुनते ही स्वामी जी की आँखों से अश्रुधारा बह निकली और अपना देश जो कभी 'सोने की चिड़िया' कहलाता था, आज उसकी यह दुर्दशा देख कर स्वामी जी को पूरी रात नींद नहीं आई। यह स्वामी जी का दूसरा रोना था।

अधिकतर लोगों ने स्वामी जी के इन दो रोनों को ही सुन रखा है, परन्तु जब स्वामी जी अपने सद्‌गुरु विरजानन्द की कुटिया से लगभग उन्तालीस वर्ष की आयु में सन् 1863 में छोड़कर आये और गुरु दक्षिणा के रूप में इनकी अन्तर्वेदना को सुना तो उन्होंने अपने जीवन के बाकी बीस वर्षों तक वेद प्रचार द्वारा विश्व में फैले अज्ञान, अन्धविश्वास और पाखण्ड को मिटाने के लिए ही अथक परिश्रम किया। इसी बीच स्वामी जी पटना, मुंगेर होते हुए सन् 1872 में कलकत्ता आने से पहले वे भागलपुर ठहरे। वहाँ उनको युधिष्ठिर नाथ महोदय के मन्दिर में ठहरा दिया गया। स्वामी जी के यहाँ आने पर पण्डितों में हलचल मच गई। यहाँ का एक वैश्य स्वामी जी के लिए भोजन की सामग्री भेजा करता था, परन्तु स्वामी को पता लगा कि उसकी भावना यह है कि मेरा आतिथ्य करने से उसे सन्तान की प्राप्ति हो। स्वामी जी ने उसी समय से उसके स्वार्थ के अन्न का ग्रहण करना ही छोड़ दिया। यह थी स्वामी जी की अन्धविश्वास के प्रति अश्रद्धा।

एक दिन स्वामी जी के पास कुछ मौलवी और पादरी आकर धर्मचर्चा करने लगे। उन पर महाराज के कथन का इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि एक बंगाली ब्राह्मण, जो कुछ काल से ईसाई हो गया था, फूट-फूटकर रोने लगा। उसने यह भी कहा, ''यदि ऐसे उपदेश पहले प्राप्त होते तो हम लोग अपने पुरातन

www.thearyasamaj.org

धर्म का परित्याग ही क्यों करते?''

महाराज को एक दिन नन्दन ओझा मिला। उन्होंने उसे गायत्री मंत्र का आराधन करना बताकर कृतार्थ किया। इसके अगले दिन महाराज ने बंगीय सज्जनों की एक बड़ी उपस्थिति में संस्कृत भाषा में एक अत्युत्तम व्याख्यान दिया, इस व्याख्यान से वे लोग बहुत प्रभावित हुए। उस दिन किसी पर्व के कारण गंगा के उस पार एक भारी मेला था। उसमें लोग अपनी लड़कियां भी पुरोहितों को दान कर रहे थे। स्वामी जी सायं समय घूमते हुए मेला की ओर निकल गये और बड़ी रात हो जाने पर भी लौट कर न आये। नन्दन महाराज स्वामी जी का भोजन मन्दिर में पहुँचाकर अपने घर चला गया। जब सबेरे स्वामी जी के दर्शनों के लिए आया तो क्या देखता है कि वह भोजन वैसा का वैसा रखा पड़ा है। उसने स्वामी जी से विनती की ''भगवन! आपने रात को भोजन क्यों नहीं खाया?'' स्वामी जी ने कहा, ''महाशय! इस देश में जो कभी ''सारे विश्व का गुरू'' था, उसमें आज इतना अधर्म और अज्ञान फैल रहा है कि गत दिन के मेले पर लोग अपनी लड़कियों तक पण्डों को दान कर रहे थे। देश की इस अधोगति को देखकर मेरा हृदय अतीव व्यथित हुआ। इसी शोक और चिन्ता में बैठे, एक तो गंगा पार ही से मैं बड़ी रात बीते यहाँ आया और दूसरे यहाँ आकर भी, वही मानस वेदना व्याकुल करती रही। इसीलिए भूख और भोजन का ध्यान तक नहीं आया। महाराज का यह कथन सुनकर नन्दन महाशय भी अति दुःखित हुए और उनके नेत्रों से अटूट अश्रुधारा बह निकली। यह था स्वामी जी का तीसरा रोना जो अति हृदय वेदना से प्रकट होता है। यही अन्तर्वेदना महर्षि दयानन्द को अन्य ऋषियों से अलग खड़ा करती है जिसके लिए महर्षि अरविन्द को कहना पड़ा कि मैं महर्षि दयानन्द को अन्य ऋषियों की वनिस्पत सबसे ऊँची चोटी पर बैठा देखता हूँ।

❀❀❀

महापुरुषों की जयन्ती		महापुरुषों की पुण्यतिथि	
दादाभाई नौरोजी	4 सितम्बर	यतीन्द्रनाथ दास	13 सितम्बर
डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन्	5 सितम्बर	गुरू विरजानन्द दण्डी	14 सितम्बर
भारतेन्दु हरिश्चन्द	9 सितम्बर	गुरू नानकदेव	27 सितम्बर
पं0 गोविन्दवल्लभ पंत	10 सितम्बर	राजा राममोहन राय	27 सितम्बर
विनोवा भावे	11 सितम्बर		
मैडम भीखाजी कामा	24 सितम्बर	शिक्षक दिवस	5 सितम्बर
पं0 दीनदयाल उपाध्याय	25 सितम्बर	विश्व साक्षरता दिवस	8 सितम्बर
शहीद भगतसिंह	28 सितम्बर	हिन्दी दिवस	14 सितम्बर

www.thearyasamaj.org

भोजन का स्वास्थ्य व रोगों पर प्रभाव

लेखकः डॉ0 लक्ष्मीनारायण

स्वास्थ्य और रोगों से भोजन का गहरा सम्बन्ध है। कुछ रोग तो पूर्ण रूप से गलत या अपूर्ण भोजन से ही पैदा होते हैं। जैसे–गला फूलने का रोग 'गायटर' भोजन में आयोडीन लवण की कमी के कारण होता है और अधिकांश रूप में सीलोन, लेबनान, पाकिस्तान, थाईलैण्ड आदि देशों में पाया जाता है। मिस्र और यूगोस्लाविया में 'पेलाग्रा' बहुत होता है जो विटामिन 'बी' की कमी से उत्पन्न होता है। वर्मा, थाईलैण्ड और पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) के इलाकों में 'बेरी–बेरी' का प्रसार है जो कि विटामिन 'बी1' की कमी से होता है। रात्रिअन्धता (रतौंधा) विटामिन 'ए' की कमी से होने वाला रोग है और विटामिन 'सी' की कमी से मसूढ़ों से खून निकलने का 'स्कर्वी' रोग हो जाता है। 'रक्ताल्पता' प्रायः भोजन में लौहतत्व की कमी से होता है तथा कैलशियम और विटामिन 'डी' कम मिलते हैं तो बच्चों की हड्डियां टेढ़ी होने का रोग 'रिकेटस' हो जाता है ये हुए भोजन में कुछ विशेष तत्वों की कमी से होने वाले रोग जिन्हें पोषणहीनता जनित रोग (डैफिशियेन्सी डिसीसेज) कहा जाता है। लेकिन, जरूरत से ज्यादा खाने से तथा जरूरत से कम खाने से, बेमेल भोजन खाने से, बेवक्त खाने से गन्दा, बासी और गरिष्ठ भोजन खाने से कितनी प्रकार के और कौन–कौन से रोग पैदा होते हैं इनका कोई हिसाब या रिकार्ड नहीं रखा गया है। लेकिन फ्रांस के एक बड़े अस्पताल के डाक्टर ने कहा है कि 100 से 50 रोग जहाँ स्वास्थ्य सम्बन्धी दूसरी अनियमितताओं से उत्पन्न होते हैं वहाँ अकेले भोजन की अनियमितता 50 फीसदी रोग पैदा करती हैं।

रोगों में भोजन क्या असर दिखाता है, यह बताने के लिए हम यहाँ एक–दो उदाहरण देते हैं।

''रामप्रसाद नामक एक रोगी हमारे पास आया, उसकी आयु लगभग पैंतीस वर्ष थी। स्वास्थ्य सामान्य तौर पर अच्छा था, किन्तु उसके सारे शरीर में 'एग्जिमा' फैल गया था, शरीर की खाल रुखड़ी और मोटी–सी हो गई थी। तीन वर्ष पूर्व 'एग्जिमा' उसकी टांगों से शुरू हुआ और धीरे–धीरे बढ़ने लगा, और इन तीन वर्षों में एक दिन भी ऐसा नहीं हुआ जिस दिन उसने कोई दवा न खाई हो अथवा लगाई न हो। त्वचा–विशेषज्ञों की सम्मति से वह कई तरह के इंजेक्शनों का कोर्स भी लगवा चुका था। किन्तु किसी भी औषधि से रोग हटना तो दूर की बात रही रोग रुका तक नहीं, बढ़ता ही गया। स्थिति स्पष्ट थी कि उसके रक्त में काफी गन्दगी पैदा हो गई थी। फलतः हमने उसे चार दिन का उपवास कराके केवल फल और सब्जियाँ (कच्ची) खाने का आदेश दिया, सभी तरह के अनाज बन्द कर दिए गए। एक मास तक फल और सब्जियाँ खाने पर उसके शरीर की खुजली जाती रही। दो मास बाद त्वचा का रूखापन बहुत कम हो गया और चार मास में 'एग्जिमा' बिल्कुल ठीक हो गया। किन्तु रोगी पर अनाज छोड़कर केवल फल और सब्जियों को खाने का इतना अच्छा प्रभाव पड़ा और उसे अपने स्वास्थ्य में इतना सुधार मालूम पड़ा कि वह एक वर्ष तक फल और सब्जियों पर ही रहा। अलबत्ता बाद को उसकी खुराक में दूध शामिल कर दिया गया था।

एक रोगी की आयु लगभग पच्चीस वर्ष थी–डेढ़ साल से मलेरिया से परेशान था। कभी आठ दिन में, कभी चौथे दिन और कभी दूसरे दिन मलेरिया बुखार चढ़ता जो 104 डिग्री तक पहुँचता था। जिगर और तिल्ली बढ़ गये थे टेंट आगे को निकल आया था, शरीर बहुत दुबला हो गया। मलेरिया नाशक नवीनतम औषधियाँ सेवन करके थक चुका था, लेकिन मलेरिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। काफी लीवर एक्सट्रेक्ट के इंजैक्शन लगवाए गए, खून बढ़ाने के टानिक दिए गए, किन्तु रोग पर कोई असर नहीं हुआ। अन्ततः हमने इस रोगी को भी भोजन–चिकित्सा पर रखा, नीबू मिला पानी दिन में तीन बार पिलाया जाता था। सर्दियों के दिन थे। अतः सब्जियाँ और फल खूब उपलब्ध थे। गाजर, टमाटर, मूली, शलजम, चुकन्दर तथा पपीता, सन्तरा, चीकू और अमरूद फलों में दिए जाते थे। अनाज और दालें बिल्कुल बन्द कर दी गई थीं। इस भोजन–चिकित्सा का प्रभाव यह हुआ कि तीसरे दिन से रोगी को खुलासा शौच आने लगा। जबकि महीनों से उसे खुश्क और थोड़ी टट्टी आती थी। इस भोजन–चिकित्सा से उसे पन्द्रह दिन के अन्दर सिर्फ दो बार हल्का–हल्का बुखार हुआ, बुखार फिर नहीं हुआ। एक मास में तिल्ली और जिगर आधे से अधिक घट गए। रोगी की भूख असाधारण रूप से जागृत हुई पन्द्रह दिन बाद दूध शुरू कर दिया गया था। दो मास की इस भोजन चिकित्सा से केवल रोगी का रोग ही दूर नहीं हुआ बल्कि उसके स्वास्थ्य में अप्रत्याशित उन्नति हुई।

आशा है कि पाठक इतने से ही भोजन का महत्व और उसकी रोग–निवारक क्षमता के बारे में अनुमान लगा सकेंगे। इस सिलसिले में और भी बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं, किन्तु स्थानाभाव से हम अधिक नहीं लिख सकते। बहरहाल गठिया, ऊँचा रक्तचाप, मधुमेह जैसे रोग भी भोजन–चिकित्सा से दूर हो जाते हैं।

और इस प्रकार पाठक समझ गए होंगे कि भोजन स्वास्थ्य और रोगों में महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

जब भट्टोजि दीक्षित के प्रयत्न स्वरूप सिद्धान्तकौमुदी के अतिरिक्त अन्य व्याकरण-ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन समाप्त हो गया था, जब अष्टाध्यायी का पठन-पाठन बन्द हो चुका था, जब अष्टाध्यायी के मर्म से शून्य पण्डित कहते थे कि न अष्टाध्यायी पढ़ने से व्याकरण आता है और न महाभाष्य की गणना व्याकरण ग्रन्थों में होती है, जब कहीं-कहीं आधी-अधूरी अष्टाध्यायी के दर्शन मात्र हो पाते थे, जिसने उस अन्धकारमय युग में अष्टाध्यायी का पुनः प्रचलन किया, जिस परिव्राट ने वह महान् कार्य किया जो बड़े-बड़े सम्राट न करवा सके, जिसके पाण्डित्य के कारण संस्कृत व्याकरण का कालक्रम 'दण्डी पूर्व' और 'दण्डीवाद' के रूप में लिखा जा सकता है, अष्टाध्यायी का पुनरुद्धार करने वाले उस व्याकरण सूर्य को, शब्दशास्त्र के ऋषि को, साक्षात् कृतधर्मा को नमन।

जिसने ऋषिप्रणीत ग्रन्थों पर बिना किसी नूतन तत्त्व के व्यर्थ टीका लिखकर मूल ग्रन्थ का क्रम भंग करने वाले ब्रह्महत्या सामान्य मनुष्यों को यह अनर्थ बन्द करने की चेतावनी दी, जिसने भोगवादी संस्कृति के पुजारी लेखकों की पुस्तकों की भरमार में से तत्त्वदर्शी ऋषियों के आर्षग्रन्थों को पहचानने की कसौटी प्रदान की, जिसने अनार्ष चिन्तन के घनघोर काले बादलों में छिपे आर्ष ज्ञान के सूर्य के पुनः दर्शन करवाए, जिसके जीवन के अन्तिम दो दशकों में जीवन-वृत्त की परिधि का केन्द्रबिन्दु आर्षग्रन्थ रहे, भारतीय-अस्मिता तथा पहचान को बनाए रखने की दिशा में क्रान्तिकारी पग उठाने वाले उस अमर योद्धा को नमन।

जब धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से पूर्णतया विघटित भारतवर्ष में अनेक छोटी-छोटी रियासतें थीं, जब उन पर अंग्रेजी शासन का शिकंजा दिन-प्रतिदिन कसता जा रहा था, जब अज्ञान, अशान्ति, दरिद्रता, भुखमरी, अकाल तथा अराजकता, का पूर्ण साम्राज्य था, जब परस्पर घोर विरोधी मतमतान्तरों का जाल बिछा हुआ था। जब अनेक देवी-देवता थे जिनके भिन्न-भिन्न मन्दिर थे, जिनमें स्व-प्रकल्पित भिन्न-भिन्न शास्त्रों के आधार पर पूजा-पाठ की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्रचलित थीं, जब न चिन्तन समान था, न विचार, न आचार समान था, न व्यवहार, न आराध्य देव एक था, न पूजा-पाठ की विधि, न आचार्य एक था, न धर्मग्रन्थ, जब विभिन्न पुराणों की रचना की जा चुकी थी, जब विभिन्न आचार्यों की सम्पूर्ण शक्ति अपने-अपने सम्प्रदाय की श्रेष्ठता सिद्ध करने में लग रही थी। तब विदेशी शासन के विरुद्ध राजाओं एवं प्रजा में चेतना पैदा करने वाले, सम्प्रदायवाद के विरुद्ध सतत संघर्ष कर एकता का बीज-वपन करने वाले, पुराणों, मतमतान्तरों एवं सम्प्रदायों के विरुद्ध ध्वनित उस स्वर को नमन।

जब चेतन्य जीवात्मा जड़ प्रकृति के सामने माथा टेककर अपना और परमात्मा दोनों का अपमान कररही थी, जब एक निराकार परमात्मा की स्तुति प्रार्थनोपासना के बदले नित्य नए स्वनिर्मित भगवानों की मूर्तियों का पूजन जोरों पर था, जब मूर्तिपूजा और अवतारवाद ने जगन्नियंता प्रभु को ही उसके स्थान से अपदस्थ कर दिया था, जब लगभग सभी आचार्यों एवं संप्रदायों के प्रवर्त्तकों तथा उनके अनुयायियों ने मूर्तिपूजा के साथ दुरभि-सन्धि करने में ही भलाई मान ली थी, जो आचार्य स्वयं अवतारवाद के पोषक न थे उनके शिष्य उन्हें ही अवतार एवं साक्षात् भगवान् मानने लग गये थे, ऐसे समय में मूर्त्तिपूजक परिवार में जन्मे उन्हीं संस्कारों में पले मूर्त्तिपूजा के प्रसिद्धतम गढ़ों में शिक्षा प्राप्त तथा उन्हीं के बीच में रहने वाले जिस प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी ने मूर्त्तिपूजा और अवतारवाद को वेद-विरुद्ध घोषित कर इस चिन्तन को दृढ़ शास्त्रीय आधार प्रदान किया जिस आचार्य ने स्वयं तो क्या जिसके शिष्य ने भी मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद से समझौता न किया, जिसने मूर्त्तिपूजा के स्थान पर गायत्री, प्राणायाम तथा योगाभ्यास पर आधारित ईश्वरोपासना पर बल दिया, उस सच्चे ईश्वरोपासक को नमन।

❁❁❁

www.thearyasamaj.org

'तपोभूमि' सितम्बर 2013 R.N.I. No. 2321/57 रजि. सं. MTR नं. 04/2013-15

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण	150.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शंकर सर्वस्व	120.00	महिला गीतांजलि	10.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	क्या भूत होते हैं	10.00
नारी सर्वस्व	60.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
संस्कार चन्द्रिका प्रथम भाग	40.00	सच्चे गुच्छे	8.00
विदुर नीति	40.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	नवग्रह समीक्षा	6.00
चाणक्य नीति	40.00	आर्यसमाज और श्रीराम	6.00
वेद प्रभा	30.00	आचार्य श्रीराम शर्मा : एक सरल चिन्तन	5.00
शान्ति कथा (प्रेस में)		वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
नित्य कर्म विधि	30.00	गायत्री गौरव	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
बाल सत्यार्थ प्रकाश	25.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
यज्ञमय जीवन (प्रेस में)		सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
दो बहिनों की बातें	25.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
दो मित्रों की बातें (प्रेस में)	25.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर (प्रेस में)		भागवत के नमकीन चुटकुले	5.00
सुमंगली (प्रेस में)		आदर्श पत्नी	5.00

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2013 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें!

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबा. 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित